



प्रकाशक •

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-334005 (राज)

फोन 0151-2544867, 3292177

फैक्स 0151-2203150

बिना कुंज्जी के खुलै न ताला

आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन बीकानेर 334005 (राज.)

बिन कुंज्जी के बधुले न ताला

प्रवचनकार :

आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : सितम्बर 2009, 3100 प्रतियाँ

मूल्य : 35/-

अर्थ सहयोगी :

श्री रतनलाल, मुकेशकुमार, राकेश कुमार रांका
चैन्नई/सरोठ



प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-334005 (राज.)

फोन : 0151-2544867, 3292177

फैक्स : 0151-2203150



मुद्रक :

तिलोक प्रिंटिंग प्रेस

मोहता अस्पताल के पास, बीकानेर

मो. : 9314962475

प्रकाशकीय

शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी प्रशान्तमना आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा. हुक्मगच्छ के नवम् एवं परम पूज्य आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के पट्टधर है। आपश्री संयम के प्रति सजग, अनुशासन के प्रबल हिमायती एवं व्यसनमुक्ति सस्कार क्रान्ति के अद्भुत प्रणेता है। इसी के कारण आज साधुमार्गी जैन संघ की यशकीर्ति चहुँदशा में फैल रही है। आचार्य श्री नानेश ने अपनी दिव्यदृष्टि से आचार्य श्री रामलालजी म.सा का चयन कर संघ को एक मजबूत आधार प्रदान किया।

आचार्य श्री रामेश के पावन विचार सम्पूर्ण समाज में एक अलौकिक क्रान्ति का संचार कर रहे हैं। आपके क्रान्तिकारी प्रवचन निःसंदेह आज के इस युग में अत्यन्त प्रासंगिक है। संघ ने आपके द्वारा प्रदत्त ओजस्वी प्रवचनों को श्री रामउवाच के रूप में संकलित करने का निर्णय लिया। तदनुसार श्री रामउवाच प्रवचन माला का यह 11वां भाग बिन कुंज्जी के खुले न ताला आपके हाथों में है। इस पुस्तक के समस्त प्रवचन आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा द्वारा जयपुर चातुर्मास में चातुर्मास के अन्तर्गत जनजागरण हेतु प्रदान किये गये थे।

प्रस्तुत कृति का संरक्षण महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्रकंवरजी म सा के निर्देशानुसार विदुषी महासतीवर्या श्री सुयशप्रज्ञाजी म.सा. ने किया। सम्पादन हेतु ख्यातनाम शब्द-शिल्पी डॉ आदर्श सक्सेना का चयन किया गया।

इस वर्ष संघ के गौरवशाली राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड तथा राष्ट्रीय महामंत्री श्री गौतमजी पारख की भावनानुसार संघ ने श्री रामउवाच के प्रकाशन को नवीन स्वरूप देने का निर्णय लिया। उसी अनुरूप उपरोक्त पुस्तक को श्रेष्ठ साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में हमारे संघ के उदारमना दानवीर शासननिष्ठ श्री रतनलालनजी, मुकेशकुमारजी, राकेशकुमारजी राका, चैन्नई निवासी का अर्थ सहकार का आग्रह रहा। निश्चित ही आपकी शासननिष्ठा समर्पणा एवं श्रद्धा बेजोड़ है। संघ आपके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता है।

मैं संघ की ओर से तथा अपनी ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगी बने समस्त आत्मीयजनों का आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता, जिनके सहयोग से ही यह भागीरथी कार्य सम्पन्न हो सका। सम्पादन में आचार्य-प्रवर के मूलभावों को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है तथापि अज्ञानतावश यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

संयोजक

राजमल चौरड़िया

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकां

श्री रतनलालजी, मुकेशकुमारजी, राकेशकुमारजी राका चैन्नई/सारोठ

स्वनामधन्य श्रेष्ठिवर स्वर्गीय श्री रोड़मलजी सा. राँका तथ्य उनकी धर्मपत्नी सुश्राविका स्वर्गीय श्रीमती कंचनबाई मूल निवासी सारोठ (ब्यावर के पास) हैं। स्व. श्री मेघराजजी रांका के सुपुत्र श्री रोड़मलज उदार, सरल, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी सुश्रावक थे। आपके पाँच पुत्र एवं एक पुत्री हैं। श्री राँकाजी ने अनेक व्रत-प्रत्याख्यान अंगीकार कर रखे थे नियमपूर्वक 6-6 सामायिक, स्वाध्याय आपकी प्रतिदिन की दिनचर्या में शामिल थे।

आपके ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्री बालचन्द्रजी रांका ने अपना कार्यक्षेत्र दक्षिण में चैन्नई को बनाया। व्यापार में अभिवृद्धि के साथ-साथ आपने धार्मिक, सामाजिक कार्यों में भी अपार यश प्राप्त किया। 'समता-भवन', तण्डियारपेट के निर्माण में आपका मुख्य सहयोग रहा। उनके पुत्र श्री अशोकजी भी उन्हीं के पदचिन्हों पर चल रहे हैं।

आपके द्वितीय पुत्र श्री कन्हैयालालजी राजस्थान में ही रहते हैं। आप सारोठ संघ के पूर्व अध्यक्ष थे। आपके तृतीय सुपुत्र श्री सम्पतराजजी रांका पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ तण्डियारपेट, चन्नई के अध्यक्ष थे। चतुर्थ पुत्र श्री पारसमलजी रांका पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ तण्डियारपेट, चन्नई के मानदमंत्री रह चुके हैं एवं पुत्री नवरतनबाई रूणीवाल भी धर्मनिष्ठ एवं सदसंस्कारी हैं एवं सपरिवार चैन्नई में रहते हैं।

आपके पाँचवे पुत्र श्री रतनलालजी रांका अत्यन्त मिलनसार, मृदुभाषी, सुहृदय, उदारमना, सेवाभावी युवारत्न हैं। आपका धार्मिक-सामाजिक कार्यक्षेत्र विस्तृत है। आपने श्री साधुमार्गी जैन संघ, तण्डियारपेट के पूर्व अध्यक्ष के रूप में समता भवन एवं उसकी गतिविधियों में काफी प्रशंसनीय कार्य किया। आप पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ, चैन्नई के मानद मंत्री रह चुके हैं साथ ही साथ आप श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के राष्ट्रीय मंत्री व श्रमणोपासक के सह सम्पादक व साहित्य प्रकाशन के सहसंयोजक पद को सुशोभित कर चुके हैं, वर्तमान में आप राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं। आप श्री साधुमार्गी जैन संघ, चैन्नई के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं एवं भगवान महावीर

आहंसा प्रचार सघ, चन्नइ क आप न कवल उपाध्यक्ष ह, बाल्क एक कमठ कार्यकर्ता भी है। स्थानीय एवं बाहर की अनेक संस्थाओं से आप जुड़े हुए हैं एवं उनमें आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता है। आर.आर. ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन (प्लास्टिक) आपका व्यापारिक प्रतिष्ठान है। आप केवल व्यापार तथा धनोपार्जन में नहीं, अपितु पारमार्थिक कार्यों में भी पूर्णरूपेण सक्रिय हैं। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आप जीवंत प्रतीक हैं। धार्मिक क्रियाओं के साथ-साथ आप मानवसेवा के प्रति भी उदात्त भावना रखते हैं और इसी भावना को साकार रूप प्रदान करते हुए आपने अपने पूज्य माताजी-पिताजी की पुण्यस्मृति में सारोठ में श्रीमती कंचनदेवी रोड़मलजी रांका चिकित्सालय का भी निर्माण करवाया है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सन्तोषबाई धार्मिक प्रवृत्ति, संत-सती सेवा एवं आतिथ्य-सत्कार में सदैव अग्रणी रहती हैं एवं अपने पति को धार्मिक कार्यों में सदा सहयोग देती रहती हैं। सचमुच में यह कहावत यहाँ शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है कि 'हर सफल आदमी के पीछे एक महिला का हाथ रहता है'। आपके दो सुपुत्र- श्री मुकेशकुमार, श्री राकेशकुमार भी अपने पिता के पदचिन्हों पर चल रहे हैं। आपकी पुत्रवधु सौ. दीपा व आरती भी धार्मिक प्रवृत्ति से ओत-प्रोत हैं। आपके दो सुपौत्र श्री ऋषभ, श्री आदेश व एक सुपौत्री महक हैं।

आपका परिवार एक धर्मनिष्ठ परिवार है। आदर्शत्यागी, पंडितरत्न, शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनिजी म.सा. एवं आदर्शत्यागिनी, विदुषी महासती श्री जयश्रीजी म.सा. आपके संसारपक्षीय बहनोई व बहन हैं।

आपका परिवार स्व. आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान आचार्य श्री रामेश के प्रति अनन्य आस्थावान एवं पूर्णरूपेण समर्पित है। आपने श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ को वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा. के प्रवचनों एवं सद्साहित्य को प्रकाशित करने एवं जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए अपनी सहमति प्रदान की है, इसके लिए संघ आपका आभारी हैं। हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि अब तक श्री राम उवाच के दस भाग निकल चुके हैं और एकादशम भाग 'बिना कुंजी के खुले ना ताला आपके हाथों में है। सुज्ञ पाठक अधिक से अधिक इसका लाभ उठायेंगे, इसी आशा और विश्वास के साथ.....

केशरीचंद सेठिया,
चैन्नई

अनुक्रमणिका

1. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य	: 7
2. सौभाग्य का बीज	: 15
3. स्वप्न और सत्य	: 26
4. घट-आंगन में दीप जले	: 40
5. अपुट्ठ बागरणा माहात्म्य	: 57
6. आद्याचार्य का अनुपम प्रदेय	: 61
7. सच्चा रक्षा-सूत्र	: 74
8. मन चंगा तो कठौती में गंगा	: 87
9. पुरुषार्थ का पर्याय	: 95
10. कोड नम्बर यह अरिहंत का	: 111
11. पात्रता हो आधार	: 125
12. मन बने निर्ग्रन्थ	: 135
13. अहं तज अहं बनो	: 143
14. परम धर्म है औषधि	: 154
15. चित्त बने राडार	: 166
16. धर्म बिना सब सून	: 179
17. आलौकिक हो आत्मप्रदेश	: 185
18. विन कुञ्जी के खुले न ताला	: 192
19. क्रान्त पथ के पथिक : सिरीवाल	: 203
20. जगे हमारी सुप्त शक्तियाँ	: 211

1. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य

शुद्ध आलम्बन के स्वरूप की कुछ चर्चा आपके सामने कर चुका हूँ। आलम्बन, आधार (सहारा) को कहते हैं। यह आधार या सहारा यदि शुद्ध होता है तो उस आधार के सहारे हमारी क्रियाएँ, चिन्तन-मनन शुद्धता की ओर बढ़ती चली जाती है। कई भाई-बहिन तीन दिन की तपस्या करते हैं। कई बेला करते हैं, कई पौषध सहित करते हैं। दीपमालिका का प्रसंग आपके सामने आने वाला है, उस प्रसंग से भी तपस्या होती है, पर क्या कारण है कि बहुत-सी क्रियाएँ अब नहीं होती। बहुत से भाई इन दिनों में पहले तो रोकड़-बहीखाते बदलते थे, पर अब कहते हैं- बदलने का नहीं रहा। “स्वास्तिक” आदि बनाकर परम्परा का निर्वाह कर लेते हैं। लिखते हैं- गौतम स्वामी की लब्धि, शालिभद्र की ऋद्धि, अभयकुमार की बुद्धि, भरत की पदवी, बाहुबली का बल कयवन्ना का सौभाग्य.....। सब-कुछ माँगा है। आपने लब्धि, ऋद्धि, सौभाग्य, पदवी, बल ये तो सब माँग लिये, इन सबकी कामना हो गई, पर मूल बिन्दु पर आप केन्द्रित हो नहीं पाये। जिसकी प्राप्ति की कामना की उसके भी कोई न कोई कारण रहे होंगे। इस स्थिति पर तनिक गंभीरता से विचार करे।

हम कहें अभयकुमार की बुद्धि, तो वह कैसे प्रगट हुई ? उसके इतिहास को देखिये। उन कारणों को ढूँढने का प्रयत्न कीजिये, जिनसे वह स्थिति बनी। वे कारण यदि हमारे भीतर पैदा हो जाये, उन्हें हम आजमा ले, तो हमारी भी अभय जैसी बुद्धि बन सकती है। विचार कीजिये अभयकुमार जैसी बुद्धि से तात्पर्य क्या है ? अक्लमंद तो कई

कैसी हास्यास्पद स्थितियाँ बन जाती है, इससे संबंधित एक दृष्टांत देता हूँ।

एक बहुत बड़ा धनाढ्य था, जो ब्याज पर पैसे देता था और ब्याज भी पूरा वसूलता था। ऐसे बहुत से व्यक्ति ब्याज में गड़बड़ी करते हैं। 4 महीने को 5 महीने बताना साधारण बात है। ऐसे पैसे वसूलने वालों का पैसा बरकत नहीं देता। वह सेठ तालाब में गिर गया, तैरना नहीं जानता था, गले तक डूब गया, प्रयत्न करता रहा, पर निकल नहीं पाया। इसे देखकर लोग कहते हैं- “मरने दो।” भीड़ इकट्ठी हो गई। लोगों को काम क्या है ? देखने की रहती है। पर धर्म के नाम पर, ज्ञान के लिए फुर्सत नहीं है। सड़क पर नजारा देखने में दो घंटा लगे तो भी थकान नहीं आएगी। एक दयालु व्यक्ति उधर से गुजर रहा था। पूछा बात क्या है ? पता चला एक धनाढ्य डूब रहा है। दयालु व्यक्ति ने आवाज लगाई- हाथ दे दो। कई बार कहा पर बात ‘देने’ की थी इसलिये उस धनाढ्य ने हाथ भी नहीं दिया। दयालु व्यक्ति अनुभवी भी था। धनाढ्यों की मानसिकता जानता था, अतः बात बदलकर कहा- “लो मेरा हाथ ले लो। लो पकड़ो।” उसने तुरन्त पकड़ लिया और निकल आया। ऐसा होता है संग्रह बुद्धि वालों का हाल। उससे कहा- “लाओ”, तो देने वाला नहीं। कहा- “लो, मेरा हाथ पकड़ो।” तो झट पकड़ लेगा। अंतर क्या है ? बस मनोविज्ञान का ही अंतर है। व्यक्ति की वृत्ति कैसी है, उसका दिग्दर्शन हो जाता है। देने के लिए कौड़ी दे नहीं पाता, हाथ धूजता है, पर “लो” कहो तो तुरन्त ले लेता है। कहने का आशय है कि संपत्ति सुखी नहीं करती। ऐसी मानसिकता रहे तो शांति प्राप्त नहीं हो सकती। वह आलंबन ही शुद्ध नहीं है।

अभयकुमार की जैसी बुद्धि की बात चल रही थी। यदि आप उनके जैसी बुद्धि प्राप्त करना चाहते हैं तो पहले शुद्ध आलंबन स्वीकारे, आल-जंजाल दूर करे, तामसी वृत्ति का त्याग करें। उसके त्यागपूर्वक सात्विकता को ग्रहण कर कदम बढ़ाएँ तो जो शांति-संतोष प्राप्त होगा, उसकी आप कल्पना तक नहीं कर सकते।

भगवान महावीर ने कठिन परीषह सहन किये थे, पर उनकी

2. सौभाग्य का बीज

शुद्ध आलम्बन साधना का आधार होता है। वह शुद्ध हो तो साधनाएँ भी शुद्ध हो सकती हैं, परन्तु यदि आधार ही कच्चा हो तो मकान मजबूत नहीं हो सकता। नींव या आधार कमजोर है तो मकान का ढाँचा सहारा किसका पायेगा ?

साधना के चार आयाम हमारे सामने आते हैं। वैसे तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के साथ दान-शील-तप और भावना भी चार आयाम हैं। परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि लक्ष्य तो एक ही है, रास्ता हम कोई भी चुनें। हाँ यह अवश्य है कि जब दान की बात आती है तो उसके शुद्ध स्वरूप पर विचार करना भी अनिवार्य हो जाता है। अतः उस पर विचार कर लें।

दान की अनेक कोटियाँ हैं, पर सुपात्र दान महत्त्वपूर्ण दानों में एक माना जाता है। आप कहेंगे महत्त्वपूर्ण में एक, इसका मतलब है अन्य भी महत्त्वपूर्ण दान हैं। जैसे अनुकंपा दान या अभयदान। हाँ ये भी श्रेष्ठदान हैं। अन्य दान भी गणना में आते हैं। जब हम फल की आकांक्षा लेकर चलते हैं तो कामना बड़ी ऊँची होती है। चाह ऐसी रहेगी भले वैसी के दर्शन भी नहीं किये हों। पर इतनी ऊँची चाह कभी उड़ान भर भी सकेगी या नहीं, यह भी सोचा है ? भौतिक पदार्थ के प्रति कामना होती है, वैसी ही आत्मिक सुख के प्रति भी बने तो व्यक्ति निहाल हो जाये। पर ऐसा हो पाना बहुत मुश्किल होता है।

इस संदर्भ में अभयकुमार का प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण है, अतः उसे सुन ले। अभयकुमार की बुद्धि संसार में उलझने वाली नहीं थी। एक बार भगवान महावीर से पूछा गया- “भंते ! इस आरे में कौनसे अंतिम सम्राट मोक्ष में जाएंगे ? कौनसे अंतिम राजा मोक्ष में जाने वाले हैं ?” भगवान ने कहा- उदायन सम्राट ही अंतिम सम्राट है जो मोक्ष में जाने वाले हैं।”

सुपात्र दान देने वालों की लम्बी सूची है। भगवान महावीर के युग में भी सुपात्र दान देने वालों की कमी नहीं थी। यही स्थिति अन्य तीर्थकरों के समय की भी थी। इस संबंध में मुख्य बात यह है कि दिया जाने वाला पदार्थ शुद्ध होना चाहिये। भगवान महावीर को वेदना हो गई और सिंह अणगार आर्तध्यान में आ गये। अफवाह फैल गई कि भगवान महावीर की आयु कम रह गई है। सिंह अणगार विचलित हो गये। भगवान महावीर ने अन्य मुनियों से कहा कि उन्हें यहाँ ले आओ। उनके आने पर भगवान ने कहा कि सिंह अणगार ! आर्तध्यान करते हुए तुम्हारे भीतर ये अध्यवसाय बना कि मेरे धर्म गुरु, धर्माचार्य की आयु कम रह गई है और तुम्हारा ध्यान विचलित हो गया, किन्तु ऐसी बात नहीं है। मैं तो अभी भूमंडल पर विचरण करूँगा। मुझे जो वेदना हो रही है उसकी औषध है- रेवती गाथापत्ति के यहाँ। उसने दो प्रकार के मुरब्बे बना रखे हैं- एक घोड़ों के लिए और एक मेरे लिए। जो मेरे निमित्त बनाकर रखा है उसे नहीं लाना है। बंधुओं ! उस समय भी ऐसे श्रावक होते थे जो भक्ति में बहते थे। जानकारी थी कि प्रभु को बीमारी है तो बना ली औषध। पर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी से क्या छिपा रह गया था ? कहा- जो मेरे निमित्त बनी है नहीं लानी, किन्तु जो घोड़े के लिए बनाई गई है, वह बिजौरापाक ले आना। ऐसा होता है शुद्ध भिक्षा का प्रसंग।

शुद्ध दान देने से कैसे कर्मों का क्षय और कैसे पुण्य का अर्जन होता है, इस पर भी विचार करें। दान देने से पुण्यकर्म का उपार्जन करता है। उससे जो सांसारिक सुख के साधन प्राप्त होते हैं, शुद्ध दान देने से उन संसार के सुखों के प्रति व्यक्ति का आसक्ति भाव नहीं रहता। यह है सुपात्रदान की महिमा। व्यक्ति सोचता है दान देना है, किन्तु दान देने की स्थिति में भिन्नता हो सकती है। एक व्यक्ति अनुकंपा से दान देता है, एक पारिवारिकजन को और एक अन्य उल्लास भाव से साधु को दान देता है। पात्र और भाव की भिन्नता से दान में अंतर आ जाता है। विचार-अध्यवसाय से भी अंतर आ जाता है और देकर पश्चात्ताप करें तो काता-पीता कपास एक हो जाता है। कयवन्ना ने पूर्वजन्म में जो सपात्र दान दिया था, उसकी बदौलत जहाँ भी गये सौभाग्य निखरा हुआ

के लिए दौड़े तो वह दूर-दूर जाती है, परन्तु जब उसे पीठ दे देते हैं और व्रत-नियम के प्रति निष्ठावान बन जाते हैं तो संपत्ति चरणों में लोट-पोट हो जाती है। इसीलिये कहा है-

चरण कमल कमला बसे रे
निर्मल स्थिर पद देख....।

ऐसे चरणों में लक्ष्मी चारों ओर बिखरी रहती है। ऐसी एक नहीं अनेक कथाएँ हैं, परन्तु मात्र सुनते रहें पर हार्द्र को न लें तो कलेवर से कोई लाभ नहीं होने वाला है। इसलिये प्रत्येक कथा के भाव को, मन्तव्य को, उसके चेतन तत्त्व को ग्रहण करना चाहिये। उस चैतन्य तत्त्व को हृदयस्थ कर लिया तो कथा हमारे जीवन का अंग बन जाएगी।

कथाएँ तो आप बहुत सुनते हैं, परन्तु क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि हमारा जीवन भी एक कथा का रूप है और ऐसी एक ही कथा है ? पर व्यक्ति अपनी जीवन कथा को पढ़/देख नहीं पाता है। उसे पढ़ने/देखने लग जाये तो फिर दूसरे की कथा पढ़ने की जरूरत नहीं रहे। सभी के जीवन में उतार-चढ़ाव की घटनाएँ आती हैं। किसी के जीवन में कम तो किसी के जीवन में अधिक। सभी जीवन गुजारते हैं, पर गुजारने में उसके गुलाम बनकर न जीयें, क्योंकि गुलाम बनकर जीने वालों की दुर्दशा आप इन्हीं कथाओं में देखते हैं। अतः इन कथाओं के हार्द्र को ग्रहण करें।

आज धनतेरस है। धनतेरस का प्रसंग भी लक्ष्मी से जुड़ता है। बताया जाता है कि एक बार दुर्वासा ऋषि इन्द्र पर कुपित हो गये और लक्ष्मी का नाश कर दिया। जब त्राहिमाम् की स्थिति बन गई, तब उन्होंने बताया कि मैंने सारी लक्ष्मी का नाश कर उसे समुद्र में डाल दिया है। फिर समुद्र मंथन किया गया। जिससे चौदह रत्न निकले। जिनमें से धनतेरस के दिन धनवन्तरी निकले थे। रत्न आज से अर्थात् धनतेरस से निकलने प्रारंभ हुए और अंतिम रत्न लक्ष्मी के रूप में तीन दिन बाद निकला। इसलिए कहते हैं कि आज के दिन लोग समुद्र मंथन से जुड़े थे, परन्तु यह तो कथा है, मात्र कलेवर है। हमें तो हार्द्र को पकड़ना है।

स्थानों पर पक्की खोज की जाये। केवल पूछने से पक्की खोज नहीं होगी।

कहते हैं पान पराग में छिपकली का पाउडर मिलाते हैं, पता नहीं क्या सच है ? फिर भी जैन कुल में जन्म लेने वाले यदि ऐसी सदिग्ध वस्तु को मुँह में डालकर गौरव का अनुभव करते हैं और समझते हैं कि हम बड़े खानदान के हैं तो यह लज्जा की बात है। आने वाले समय में स्थिति कितनी बिगड़ सकती है, इसे पहले से ही ध्यान में ले लीजिये। यदि चौके-चूल्हे पर भी आक्रमण हो तो धर्म कहाँ सुरक्षित रहेगा ? हम विश्वास करते हैं, क्योंकि भगवान ने कहा है कि मेरा शासन 21,000 वर्ष तक रहेगा। इसीलिए संस्कृति भी शुद्ध रहेगी, इसमें संशय नहीं है। पर संस्कृति में अनुचित एवं अनुपयुक्त बदलाव तो नहीं आ रहा है, यह ध्यान रखना भी हमारा काम है। एक समय क्षत्रिय कौम के श्रावक थे। कालान्तर में वैश्य आये, क्षत्रिय हटे। अब कौन आने वाला है, धर्म कौनसी करवट लेने वाला है। इसके प्रति सचेत रहें।

भाई रामलालजी बावरी के मुँह से सुना है कि उनके आस-पास के भाई व उनकी जाति के लोग पूर्व में खोटा खाना खाते थे, पर वे चाहते हैं कि इस काले तिलक को दूर करें और उनकी जाति का उत्थान हो। विडम्बना देखिये कि वे तो चाहते हैं कि उनका उत्थान हो, पर ओसवाल-पोरवाल इस दिशा में कितने सजग हैं कि चिन्ता करें कि उनका परिवार यदि सुखी है, वे सुखी है तो ये भी देखें कि उनका भाई, उनका पड़ौसी किधर जा रहा है, उनके भाई भूखे तो नहीं सोते, उनकी आँखों में आंसू तो नहीं आते, वे गलत काम में तो नहीं लग रहे हैं ? वे भले कान के कच्चे हों पर साधुओं के कान खुले होते हैं। ऐसी बातें भी सुनने में आती हैं कि उच्च कुल की कन्याएँ और पुत्रवधुएँ कॉल गल्स के रूप में प्रस्तुत होती हैं तो चिन्तनीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक बार एक सेठ के सामने उनकी पुत्रवधू ही पहुँच गई थी। ऐसी स्थितियाँ आये तो क्या समझा जाये ?

यह जौहरियों की नगरी है, यहाँ धन में झूलने वालों की कमी नहीं है। किन्तु धन का सदुपयोग हो रहा है या नहीं यह सोचने की बात

है। गरीब के आँसू पोंछने की तैयारी तो हो या नहीं, परन्तु दीपावली पर पटाखे छोड़ने में कितने रुपये लगा देते हैं। इसका हिसाब भी रखते हो या नहीं ? एक तरफ तो जल-संकट की स्थिति है, पर बंगलों की धुलाई में कितना ही पानी व्यर्थ बहाया जा रहा है। हम यह न सोचें कि हम जिन्दा रहें भले दुनिया का कुछ भी हो। ध्यान रखिये दुनिया बदल गई तो बंगले सुरक्षित नहीं रहेंगे। आपको ध्यान होगा जब बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा था, तब साधुओं को भिक्षा दूधर हो गई थी। घर कौड़ियों में बिक गये थे, सोने की अशर्फियों के बदले अनाज के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे। यदि पानी का ऐसा दुरुपयोग किया जाता रहा और खेतों को पानी नहीं मिला तो अनाज भी पैदा नहीं होगा। तब क्या हवेली के पत्थरों से पेट भर जायेगा ? तब क्या जिन्दगी बची रह जायेगी ? संपत्ति जीवनदान नहीं देगी, इसलिये समय रहते चेतिये।

एक तरफ कहते हैं भारत कर्ज में डुबा जा रहा है और दूसरी तरफ पटाखों पर इतना पैसा बरबाद कर रहे हैं। एक तरफ विकास कार्यों के लिए कर्ज ले रहे हैं, दूसरी तरफ जो हमारे पास है उसे गुलछरों में उड़ा रहे हैं। राजा जीवन जी रहे हैं। कभी चार्वाक ने कहा था-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।

जब तक जीना है, घी पीकर जीओ और घी उपलब्ध नहीं हो तो कर्ज लेकर पीओ। कर्ज लेकर डेकोरेशन करो। एक तरफ सरकार कह रही है कि कर्मचारियों के भुगतान के लिए पैसे नहीं हैं और दीपावली पर डेकोरेशन पर अंधाधुंध पैसा खर्च किया जा रहा है। हम लोक रूढ़ियों पर चलते हैं। यदि यही स्थिति रही तो कहाँ पहुँचेंगे, इस पर भी बारीकी से विचार करें। जब तक वक्त दस्तक न दे तब तक अपने आपको देखने का प्रयत्न करो। यदि हम अपने पास-पड़ोस को देखेंगे तो हमारी आँखों से निश्चित रूप से करुणा स्रोत बहे बिना रहेगा नहीं। अपने भाईयों की दशा देखकर घाटकोपर मुम्बई संघ ने जो सोचा उसे कहना अप्रासंगिक नहीं होगा।

घाटकोपर चातुर्मास में बज्जू भाई ने बताया था कि स्वधर्मी भाईयों के प्रति संघ अपने दायित्व का निर्वाह करता है। कुछ स्वधर्मी

3. स्वप्न और सत्य

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। छोटे से छोटे प्राणी को भी दुःख इष्ट नहीं है। नारकी के नैरिये जो निरन्तर दुःख में पड़े रहते हैं, वे भी दुःख से बचने के उपाय करते हैं, वे भी दुःख से बचना चाहते हैं। चींटी, मक्खी-मच्छर जैसे लघुतम प्राणी भी बचने का उपाय करते हैं। चित्त की अवस्था से एकेन्द्रिय प्राणी भी दुःख से कतराते हैं, घबराते हैं। आने वाले संकट की आशंका से उनमें भी दुःख की संवेदना में परिस्पन्दन होने लगता है। यह प्रयोग भी करके देखा जा चुका है। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि जीव, जिनमे जीवन है, चेतना है, वे सभी सुख के अभिलाषी हैं, दुःख कोई नहीं चाहता।

सव्वे जीवा वि उच्छंति जीविदं न मरिज्जिदं

प्रत्येक प्राणी में जीने की अभिलाषा होती है और इस जीने के साथ सुख-शांति की कामना भी जुड़ी होती है। कोई नहीं चाहता कि उसका जीवन दुःख में बसर हो। दुःख में जीवन बसर भी हो रहा हो, पर कामना दुःख की कभी नहीं होती।

दुःख तब और बढ़ जाता है जब चारों ओर उल्लास-आनंद का वातावरण हो, जैसा आजकल है। कल धनतेरस थी, आज रूपचौदस है और कल दीपावली का पर्व होगा। इन दिनों में व्यक्ति की भावना अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है। धार्मिक व्यक्ति धर्म में पुरुषार्थ करते हैं तो कई दीप जलाने में, कई पटाखे छोड़ने में और कई मिठाई खाने में सुख की अनुभूति करते हैं। ऐसे में अलग-अलग व्यक्तियों की भावनाएँ जाहिर होती हैं। कई अच्छी पोशाक पहनने में और कई घर की सफाई करने में समय व्यतीत करते हैं। इससे ध्वनित होता है कि व्यक्ति गंदगी चाहता नहीं है, उसे दूर करना चाहता है। इसीलिये इन दिनों को निमित्त बनाकर घर की साफ-सफाई करने की प्रवृत्ति करता

चाहे एक दिन निकले, दो दिन निकले या तीन दिन निकले पानी भी नहीं पियूँगा। वे आते तो कई दलाली करने लगते कि दर्शन कराये अन्यथा ये पानी नहीं पीयेंगे। यदि गुरुदेव काम में होते तो वे कहते- “काम में है तो दखल नही देना। थोड़ी देर इंतजार कर लूँगा।” इसे कहेंगे भक्ति का आदर्श। नहीं तो व्यक्ति दो मिनट भी धैर्य रख नहीं पाता। अस्तु, उस ब्राह्मण रूपी देव ने कहा- “मैंने पानी भी नहीं पीया है, प्यास से छटपटा रहा हूँ। कहीं प्राण न निकल जायें और तुम्हें ब्रह्म हत्या न लग जाये, अतः अवसर प्राप्त होने पर तत्काल दर्शन करना चाहता हूँ।” दर्शन प्राप्त होने पर उसने कहा- “वस्तुतः जैसी चर्चा सुनी उससे भी बढ़कर आपका रूप है, ऐसा रूप देखकर मैं कृतकृत्य हो गया।”

सनत्कुमार ने कहा- “विप्रवर ! अभी क्या देखा है, थोड़ी देर बाद आना जब मैं सारे अलंकारों से विभूषित हो जाऊँ, तब दर्शन करना।”

बाद मे विप्र आया और शृंगारित रूप देखकर बोला- “अब वो चीज नहीं रही।” सनत्कुमार ने पूछा- “इतने समय मे क्या हो गया ?” उसने उत्तर दिया- “इतना समय कोई कम नहीं है। इतने समय में तो कई आत्माएँ मोक्ष गमन कर जायें। आपने भी अनुभव किया होगा कि एक व्यक्ति अन्य किसी से मिलकर आ रहा हो और घर पर पहुँचा कि फोन मिला- “दाह-संस्कार की तैयारी हो रही है।” मृत्यु को कितना समय लगता है ? एक क्षण में मृत्यु आ सकती है, तो क्या बीमारी नहीं आ सकती ? फिर भी व्यक्ति सोचता है कि यह एकाएक कैसे हो गया ? इसी एकाएक का ज्ञान हो जाये तो फिर संसार मे कौन रुकना चाहेगा ?

मैं सनत्कुमार की पूरी कथा कहने के भाव से नहीं किन्तु उनके रूप के सत्य का दर्शन कराने के उद्देश्य से कथा कह रहा हूँ। उनके थूक में किटाणु किलकिला रहे थे। शरीर में सौलह महारोग पैदा हो गए। सौलह महारोग को जानकर वे रोये नहीं, अपितु प्रतिबोधित हो गये। सोचने लगे- जिस शरीर को नहलाने धुलाने में लगा था उसकी एक क्षण

दूसरा नाम पुण्यपाल भी दिया गया है, की हस्तशाला में भगवान चातुर्मास कर रहे हैं। हस्तिपाल सम्राट को कई स्वप्न आये। वैसे उन्हें हर समय स्वप्न आते नहीं थे। यद्यपि स्वप्न कई कारणों से आते हैं। कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि जाग न जायें तब तक स्वप्न देखते रहते हैं। तीर्थंकर की माता को 14 स्वप्न आते हैं। आज के व्यक्ति तो सोते-जागते न जाने कितने स्वप्न देखते हैं, पर हस्तिपाल के स्वप्न ऐसे नहीं थे।

स्वप्न आने के कई कारण होते हैं, किसी शारीरिक बाधा अथवा वात-पित्त कफ की अधिकता भी स्वप्न लाने में सहायक होती है। अतृप्त इच्छाएँ, कुण्ठाएँ और कामनाएँ भी स्वप्न में सहयोगी बन जाती है। किन्तु ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो भविष्य की घटनाओं की ओर संकेत करते हैं और जिनके आधार पर भविष्य का कथन किया जाता है। ऐसे ही स्वप्न हस्तिपाल राजा ने पिछली रात्रि में देखे थे। स्वप्न देखकर वे जाग गये। वे स्वयं ज्ञानी थे, इसलिये चिन्तन-मनन में उतरे, फिर भी स्वप्नों के सही अर्थ जानने में सफल नहीं हुए। तब उन्होंने सोचा कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान महावीर तो यहाँ विराजमान हैं ही, क्यों न उनके मुखारविन्द से ही इनका अर्थ प्राप्त कर लूँ ? वे भगवान के चरणों में पहुँचे। वंदन-नमस्कार किया और अपने स्वप्नों का फल, जानने के लिये अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन किया-

“भगवन् ! मैंने आठ स्वप्न देखे हैं। देखने के बाद मन में उल्लास उत्पन्न नहीं हुआ, आनंद की अनुभूति भी नहीं हुई, बल्कि भय का संचार हो गया है। हृदय में सिहरन-सी होने लगी है।” तत्पश्चात् उन्होंने स्वप्नों का विवरण दिया।

राजा हस्तिपाल ने कहा- “प्रथम स्वप्न में मैंने देखा कि हाथी कीचड़ में फंस गया है, निकलने का प्रयत्न कर रहा है, किन्तु निकल नहीं पा रहा है। द्वितीय स्वप्न में एक हष्ट-पुष्ट परन्तु चंचल प्रवृत्ति का वन्दर देखा, जो उछल-कूद करता हुआ सारे बगीचे को तहस-नहस कर रहा था। तृतीय स्वप्न में एक कल्पतरू देखा, जिसे चारों ओर से जहरीले जंतुओं ने घेर रखा था। चौथे स्वप्न में मैंने एक कौवा देखा, जो अच्छे खाने से मुँह मोड़कर विष्ठा की ओर दृष्टि लगाये हुए काँव-काँव कर

कोलाहल फैला रहा था। पाँचवे स्वप्न में मैंने वनराज को देखा। तेजस्वी-बलशाली वनराज की गर्दन पर घने बाल लहरा रहे थे, पर उसके बावजूद भी वे परेशान नजर आ रहे थे। वे बाल शरीर को नोच रहे थे, काट रहे थे और उसमें डंक मार रहे थे, जिससे उन्हें तीव्र वेदना हो रही थी और इस कारण वे परेशान नजर आ रहे थे। छठा स्वप्न अत्यन्त विस्मयकारी था। कमल जल या कीचड़ में पैदा होता है, किन्तु मैंने अकरड़ी पर खिलता कमल देखा। सातवें स्वप्न में मैंने देखा कि किसान हल जोत रहे हैं और ऊसर भूमि में बीज बो रहे हैं। बीज अच्छे हैं, पर भूमि बंजर है। आठवें स्वप्न में मैंने एक अत्यन्त मनोहर कलश कोने में उपेक्षित पड़ा देखा। उसके चारों ओर रज गिरी हुई थी, पर किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं जा रहा था।

उसे देखा मेरे हृदय में भय की सिहरन पैदा हो गई और जाग गया। यद्यपि मैंने अशुभ स्वप्न देखकर सोने का प्रयत्न किया, पर मुझे नींद नहीं आई। रह-रहकर वे स्वप्न स्मृति में उभरते रहे। जैसा कि श्रावक के लिए बताया गया है कि रात्रि के पिछले प्रहर में धर्म जागरणा करे सो मैं अनुप्रेक्षा भी करता रहा, पर मेरा मन नहीं लगा। भगवन् ! भीषण ऊहापोह की स्थिति में सारा समय निकल गया। मैंने पर्याप्त चिन्तन किया, पर कुछ अर्थ प्राप्त नहीं कर पाया और परम असंतुष्ट बना। आपसे अर्थ जानने की इच्छा से आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।

भगवान ने उत्तर देते हुए कहा- राजन् ! पहले स्वप्न में तुमने हाथी को देखा है। इसमें आने वाले विकट समय की एक झलक तुमने पायी है। इसका भाव है कि पाँचवे आरे में क्षणिक ऋद्धि को पाकर श्रावक मूढ़ हो जाएंगे और धर्म से विमुख हो जाएंगे। अभी चौथे आरे में अंतर यह है कि धन प्राप्त होने के बावजूद श्रावक उसे चित्त पर आरूढ़ नहीं कर रहे हैं। नाक के श्लेष्मा की तरह एक झटके में उसका त्याग कर देते हैं, किन्तु पाँचवें आरे में थोड़ी-सी सम्पत्ति पाकर भी आसमान में उछलेंगे। अह मे मूढ़मति बन धर्म की निन्दा करेंगे। कहेंगे- "क्या रखा है धर्म में ? देख लिया धर्म को।" बंधुओं, धर्म में लोग क्या देखते हैं. क्या पढ़ते हैं. इस पर विचार किया क्या कभी ? वस्तुतः धर्म

है क्या ? हम उपचार धर्म में जी रहे हैं या हमारे जीवन में धर्म का अवतरण हुआ है ? सामायिक-पौषध करना, ये धर्म है ? आप सोचेंगे कि महाराज सामायिक पौषध पर क्यों प्रहार कर रहे हैं। मैं प्रहार नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल सचेत कर रहा हूँ कि यदि इसे ही धर्म मान लिया तो हम उपचार में रह जाएंगे। भगवान ने स्पष्ट रूप से बताया है- गृहस्थ लिंग सिद्ध एवं अन्य लिंग सिद्ध की बात कही है और उत्तराध्ययन में बताया है कि लिंग केवल लोक प्रतीति के लिए होता है। लोग जान सकें कि ये साधु है और ये श्रावक है। पर न तो लिंग मुक्ति दिलाने वाला है, न ही पोशाक मुक्ति दिला सकती है। हाँ, कभी-कभी ये लिंग मुक्ति में साधक बन जाते हैं। इसलिए ये उपचार के धर्म हैं। जैसे प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का जब माथे पर हाथ गया उस समय मुंडन किया हुआ था। ऐसे समय में जो द्रव्य की सारी अवस्था होती है वह कभी-कभी सहयोगी हो सकती है। जैसा कथा में बताया है कि आर्द्रकुमार ने मुँहपत्ति, रजोहरण को देखा। काफी ऊहापोह की स्थिति रही, जिससे वैराग्य आ गया।

कई भाई कहते हैं कि अमुक आलम्बन को लो तो भावना निर्मल हो सकती है। पर इतने मात्र से कोई निमित्त वंदनीय-पूजनीय नहीं हो जाता। यदि निमित्त मात्र को वंदनीय-पूजनीय मान लें तो यह पोशाक भी पूजनीय बन जाएगी। करकण्डू को सांड को देखकर वैराग्य आ गया तो फिर क्या उसकी पूजा करनी थी ? कैसे-कैसे विचार लोग कर लेते हैं ? भाव निर्मल होने चाहिये। भाव निर्मल हो गये तो फिर आलम्बन की चिंता करने की कोई जरूरत ही नहीं। पर भाव निर्मल होने मात्र से वह अवस्था पूजनीय नहीं हो जाती। यदि हो सकती होती तो बहिनों की चूड़ियाँ पूजनीय हो जातीं, क्योंकि नमिराजऋषि के वैराग्य का निमित्त भी चूड़ियों की खनखनाहट थी। मानते हो क्या ? यहाँ बैठने वाले कितनों ने चूड़ियों की खनखनाहट नहीं सुनी है ? पर नमि कितने बने ? गलियों में सांड किसने नहीं देखे ? पर क्या उन्हें देखकर वैराग्य भाव बनते हैं ?

हम बहुत कुछ देखते हैं ? पर देखना मात्र हमें प्रेरित नहीं

करता। भरत की अंगूठी गिरी मेरे ख्याल से आज भी कईयो की गिरती होगी, पर भरत जैसे विचार कितनो के बने ? हाथी के हौदे पर सवारी आप भी करते होगे, पर मरूदेवी जैसे विचार कितनों मे आये ? आप भी बड़े-बड़े सघ निकालकर दर्शन करने जाते है, पर दर्शणभद्र राजा कौन बना ? मै प्रेरणा की बात कह रहा हूँ। आपके सामने भी ऐसे प्रसंग माते है। विचार कीजिये कि क्या प्रेरणा मिलती है ? एक सेठ गान-शौकत से चार गाड़ियों लेकर जाता है तो आप सोचते हैं मैं भी उसी तो ले ही जाऊँ। पर यदि एक साधु बन गया तो वह अकेला बना है, क्या आप सोचते है कि मै भी बन जाऊँ ? यदि भावना आ भी जाती है तो उसकी परिणति नहीं कर पाते हैं। शालिभद्रमुनि कर पाये थे। लगा दिया झटका। लोगो को आश्चर्य हुआ, कहने लगे- इतने धनवान ! ये ले तो लेंगे, पर क्या पाल पायेगे ? चढ़ गया होगा दिमाग में फितूर। पर यह क्या फितूर होता है ? चढ़ता है क्या कभी आप पर ? कभी चढ़ जाये तो आप भी दिखा देना। भगवान ने तो पहले ही कह दिया है। आप कहेंगे, हम तो भगवान की वाणी पालते है। भगवान ने बता दिया है-

पाकर क्षणिक ऋद्धि का योग....।

घर मे रहकर कितना दुःख देखते हैं ? बेटे-पोतों के दिये सारे दुःख सहन करेगे, पर भीतर दीक्षा के भाव नहीं जगते हैं। एक वृद्ध को पोता बार-बार झटके देता है और वृद्ध सहता है। उधर से नारद निकले और कहा- "ओ बूढ़े आ मेरे साथ। तुझे स्वर्ग में ले चलता हूँ, यहाँ क्यों झटके खा रहा है ?" तो कहेंगे- "अरे नारद के बच्चे कौन है तू ? क्यों चलूँ तेरे साथ ?" नारद कहे- "देख पोता तेरा कितना तिरस्कार कर रहा है", तो कहेंगे- "ये मेरा पोता है, मै इसका दादा हूँ। ये मेरे घर की बात है। तुम अपना रास्ता देखो।" कहेंगे- "पोता मेरा है, पर चेतने की तैयारी नहीं। विरले ही होंगे जिन्हे ठोकर लगती ओर चेत गए। एक धन्नाजी थे, उन्हें कितनी देर लगी ?" कोई तो धन्ना बनो, जिन्होंने शब्दों को पकडकर संयम जीवन स्वीकार कर लिया था।

आज तो युग बिगड़ ही चुका है। दीक्षा ले लेने के बाद भ्रं बहकावे मे आ जाते है। यह प्रचार-प्रसार का युग है। कहते है- "यु

बिब कुंज्जी के खुले ब ताला

के साथ चलो, प्रसिद्धि मिलेगी, भीड़ बढ़ जाएगी। मीडिया का सहयोग लो।" आ जाईये एक बार टी.वी पर हजारो-लाखो सुनेंगे। लाल भवन मे तो इने-गिने ही पहुँचेंगे। हजारो-लाखो सुनेगे तो कितनों का कल्याण होगा ? कितनो का कल्याण होगा यह कहना कठिन है, कभी कल्याण हो भी तो साधु को अपनी झोपड़ी जलाकर दूसरो के शीत निवारण का कार्य नहीं करना चाहिये। झोपड़ी जलने पर एक बार भभका हो जाएगा। फिर, फिर क्या बचेगा ? अतः साधु को सोचना चाहिये-

तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़े ना दूजी बार।

अर्थात् एक बार जो व्रत स्वीकार कर लिये वह उन्हें आजन्म निभायेगा। अन्यथा एक बार तो उसका भभका होगा, पर जब व्यक्ति स्वाध्याय करेगा तो जानेगा कि स्वयं महाव्रतों को खण्डित करने वाले भी दूसरों को कैसी शिक्षा देते हैं। तो ऐसी बातें करने वालो की आगे क्या शान रहेगी ? लोग कहेंगे- देख लिया हमने महाराज को।

भगवान ने प्रथम स्वप्न का अर्थ बताते हुए कहा- राजन् ! हाथी उन्मत्ता का प्रतीक है और कीचड़ परिग्रह का। जैसे हाथी कीचड़ में धंस गया, फंस गया वैसे ही क्षणिक ऋद्धि-धन को पाकर श्रावक वर्ग उसी मे फंस जायेगा। आरम्भ परिग्रह का त्याग करना उनके लिए कठिन हो जायेगा। आरम्भ परिग्रह का त्याग तो उनके लिए दुभर होगा, बल्कि वे उसमें ओर अधिक धंसने का ही प्रयत्न करेंगे। अपने धन-बल से वे नाम कमाने की चाह से इतिहास बनाने लग जाएंगे कि आने वाले समय मे लोगो को प्रमोद होगा। पर हम भूल जाते है कि क्या तीर्थंकर के इतिहास को पूरा याद रखे है ? भगवान महावीर का इतिहास क्या है और अपना क्या इतिहास बनाने जा रहे है ? क्या तीर्थंकरो के इतिहास पूरे मौजूद हैं ? यदि नही तो हमारा इतिहास मिलेगा ? आज बना लेगे पर आने वाले समय मे नही मिलेगा। जीवन तो आज चौपट हो जाएगा और इतिहास भी कुछ वर्षों बाद चौपट हो जाएगा। न इधर के रहेंगे, न उधर के। न जीवन को सुरक्षित रख पायेंगे, ना ही इतिहास को। भगवान कहते है- ऐसी नामवरी या लोकेषणा यदि श्रावक किंवा संतो मे घर कर गई तो उनकी वैसी भावना कीचड़ का रूप होगी। उसमे यदि गिरकर रह गये तो फिर निकल नही पायेंगे।

इस स्थिति में यह आवश्यक है कि हम अपना रूप पहचाने। जैसे सिंह शावक भेड़ों के बीच हो, कहीं ऐसा ही रूप तो हमने अपना नहीं बना लिया है ? एक गर्जना होगी तो उसे भान हो जायेगा कि वह गर्जना कर सकता है तो मैं क्यों नहीं ? यदि सोच लें कि हमें तो समन्वय रखना है, तो समन्वय क्यों नहीं हो पायेगा ? पर यह भी तो समझ लें कि समन्वय है किस चिड़िया का नाम ? गुड़-गोबर को एक मान लिया न तो लीपने के काम आएगा न खाने के काम आयेगा। आचार्यदेव ने बताया कि समन्वय का रूप गुण-कर्म के आधार पर संघ, समाज, परिवार में विभागीकरण के आधार पर हो तो पूरा समन्वय चलता है। पर समन्वय की धुन में आज क्या स्थितियाँ बन रही हैं ?

मैं थोड़ी कठोर और कड़वी बात कर रहा हूँ, पर यह समय का तकाजा है कि हम वर्तमान स्थितियाँ समझें और उनकी सम्यक् समीक्षा भी करें। बात आरक्षण की नीति से संबंधित है।

डॉक्टरों का आरक्षण हुआ तो 80 प्रतिशत अंक वाला सवर्ण तो सड़को पर घूमेगा और 40 प्रतिशत अंको वाला शान से कुर्सी पर बैठेगा। वह हॉस्पिटल का सर्वेसर्वा बन जायेगा। तब अखबार में ऐसी खबरे भी पढ़ेंगे कि उसने रिक्शे वाले का ऑपरेशन किया तो दो कैंचियाँ अंदर ही रह गईं। ऐसे डॉक्टर मिल जायेंगे तो हो जाएगा जनता का कल्याण ? किन्तु हालात यह है कि-

अंधेर नगरी, चौपट राजा
टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।

सारी व्यवस्था चौपट हो रही है। सब चाहते हैं हमारी कुर्सी सलामत रहे। कोई सिद्धान्त नहीं है। यदि कोई सिद्धान्त है तो एक कि मेरी कुर्सी किसी भी तरह कायम रहे। आपराधिक छवि वाले भी राजनैतिक प्रश्रय पा रहे हैं। उनका सहयोग भी तो चाहिये, ताकि कुर्सी बची रहे। राजनीति के गन्दे खेल धर्म और समाज में न घुस पायें, यदि घुस गये तो वही स्थिति इन क्षेत्रों की भी हो जायेगी। यदि ऐसे लोग संघ अध्यक्ष बने तो संघ को तहस-नहस करके रख देंगे।

4. घट-आंगन में दीप जले

शांति का स्वरूप कैसा है और शांति के सोपान कौन-कौनसे हैं ? यह प्रश्न आज का नहीं, सदियों का है, युगो-युगों का है। जब से ससार अस्तित्व में आया है, तब से चला आ रहा है। पर ऐसा भी नहीं है कि किसी ने इसका उत्तर न पाया हो, यह अनुत्तरित ही रहा हो। इसका समाधान पाया गया है। समाधान ही नहीं पाया गया है, बल्कि अपने को शांतिमय बनाया भी गया है। ऐसी आत्माएँ एक नहीं, दो नहीं, अनंतानंत हो चुकी हैं और आने वाले समय में इस शांतिमय स्वरूप को उजागर करने वाली आत्माएँ अनंतानंत होने वाली भी हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हमने अब तक उस शांति के स्वप्न को पाया है या नहीं और उसे प्राप्त करने की कितनी और कौनसी विधाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इस संबंध में तीन बातें मुख्य रूप से आई हैं- देव, गुरु, धर्म पर विश्वास करना। पहले देव पर विश्वास की बात करें।

हम अरिहंत व सिद्धदेव पर विश्वास करते हैं, उन पर श्रद्धा भी करते हैं, किन्तु अरिहंत के वचनों पर पक्का विश्वास भी करते हैं या नहीं ? यदि करते हैं तो कही विश्वास के विपरीत आचरण तो नहीं करते हैं ? यदि विपरीत आचरण है तो शांति कैसे मिलेगी ? कैसी विडम्बना है कि विश्वास तो हम करें, किन्तु विश्वास के अनुरूप आचरण नहीं करें। विश्वास करें कि शक्कर/मिश्री मीठी होती है, किन्तु खाऊँगा नहीं या पहले से मुँह में नमक की जो डली पड़ी है, उसे निकालूँगा नहीं। वह निकले नहीं तो मिश्री मुँह में जाये कैसे ? जब तक हम नमक की डली न छोड़ें तब तक मिश्री का स्वाद हमें प्राप्त नहीं हो पाएगा, भले हम मिश्री की मिठास पर विश्वास करते रहे। ऐसी ही स्थिति कतिपय अशों में हमारी बनी हुई है। हम तीर्थंकर देवों पर

विश्वास करते हैं, उनकी वाणी पर भी हमारी निष्ठा-आस्था है, किन्तु क्या आचरण भी उनकी वाणी के अनुकूल है ? कौनसे शास्त्र में कहा गया है कि क्रोध करना अथवा ईर्ष्या-द्वेष करना ? किन ग्रंथों में बतलाया गया है कि राग-द्वेष करने से आत्मा का उत्थान हो जायेगा ? किसने बतलाया है कि मान-सम्मान प्राप्त करने से आध्यात्मिक साधना संभव हो जायेगी ? ऐसा कुछ बतलाया नहीं गया है, फिर भी हमारी प्रवृत्ति उधर हो जाती है ? विचार कीजिये कि यदि प्रवृत्ति उधर है तो फिर शांति कैसे मिल पाएगी ? शांति की तरफ तो हमने पीठ कर रखी है। मुँह से उच्चारण हो रहा है, पर कदम शांति की तरफ बढ़ नहीं पा रहे हैं।

कई व्यक्ति कहते हैं- 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', अंधकार नहीं, मुझे प्रकाश की ओर ले जाओ। ले जाने या पहुँचाने के लिए कहा जरूर जाता है, किन्तु पहुँचने की तैयारी उतनों की हो नहीं पाती। आज आपसे कोई कह दे कि यदि आप शांति पाना चाहते हैं, तो मैं कहूँ वैसा आचरण करो शांति मिल जाएगी। तो हम दो मिनट सोचने लगेंगे- इनकी बात माने या नहीं ? न जाने कैसे आचरण की बात कह दे ? हम चिन्ता या चिन्तन में लग जाएंगे, पर साहस नहीं हो पाएगा कि वह जैसा कहे, वैसा करने को तैयार हो जाये। जब तक इतनी तैयारी नहीं तब तक शांति का संचार जीवन में हो नहीं सकता।

जिसने तीर्थंकर देवों की वाणी के साथ ही गहराई में उतरने का प्रयत्न किया है, वह अपने आपको कषाय से बचाकर चलेगा। वह कषाय का वातावरण देखेगा तो उसे छोड़ शांत स्थान पर पहुँचने का प्रयत्न करेगा, क्योंकि शांति का प्रभाव पड़ता है। यदि वह कषाय में निरन्तर उलझता रहे या जिस वातावरण में निरन्तर कषाय हो उसमें रहे तो उसके भी मन में उतार-चढ़ाव आ सकता है। इसीलिये हमारे आगमों में स्पष्ट कहा गया है कि जो सांसारिक शय्या है, जहाँ स्वयं गृहस्थ पूरी गृहस्थी के साथ बसा है, वहाँ साधु को नही रुकना। वह साधु के निवास योग्य क्षेत्र नहीं है। क्या कारण है ? क्या भगवान महावीर अपने साधु पर विश्वास नहीं करते थे, इसलिए मना कर दिया ? या वे जानते थे

के बीच में रुकने का भी प्रावधान है। बृहत्कल्प सूत्र में बतलाया गया है कि ऐसे उपाश्रय में ठहरना, किन्तु इसके पीछे इतना अवश्य बताया गया है कि क्षेत्र शांतिमय हो। शांतिमय होगा तो साधना में बाधा नहीं आयेगी। क्षेत्र शांतिमय नहीं होगा तो वहाँ साधना का प्रयत्न तो करेगा, किन्तु बीच में व्यवधान आ सकते हैं। इसलिए क्षेत्र शुद्धि को भी महत्वपूर्ण बताया गया है।

भगवान महावीर ने अंतिम चातुर्मास कहाँ किया था ? उन्होंने बहुत से चातुर्मास उद्यानों में किये होंगे, किन्तु अंतिम चातुर्मास हस्तीपाल राजा की कचहरी में किया, इसका उल्लेख मिलता है। उनकी गजशाला में संपन्न किया। क्या हस्तीपाल महाराज के पावापुरी के बाहर उद्यान नहीं था ? फिर वे चातुर्मास कचहरी में क्यों कर रहे थे ? वह क्षेत्र भी उन्हें अनुकूल लगा होगा। साथ ही कोई यह भी न सोच ले कि भगवान तो बगीचे में ही ठहरे तो आज के साधु शहरों में क्यों ठहरते हैं ? यदि शहर में अनुकूल स्थान है, कल्पमर्यादा सुरक्षित रह सकती है तो वैसे स्थान का चयन भी कर सकते हैं और वैसे स्थान में शेषकाल या चातुर्मास करने में बाधा जैसी बात नहीं लगती।

प्रभु महावीर का अंतिम चातुर्मास और वहाँ भगवान के द्वीप से ज्योति ले अपनी आत्मा को ज्योतित करने नवमल्ली, नवलच्छी नरेश पहुँचे हैं। वे पौषध व्रत स्वीकार करते हैं। कितना शांत वातावरण होगा। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका प्रभु के समीप हैं और प्रभु अपनी साधना में तन्मय है। भगवान के भी बेले की तपस्या हो जाती है। लगभग सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि यह भगवान का अंतिम समवशरण है। उस दिन अमावस्या की रात्रि थी। उसी रात्रि में भगवान महावीर की ज्योति जो तब तक शरीर में आबद्ध थी, उस शरीर से अलग होकर ज्योतिर्मय स्थान में पहुँचने वाली थी। ऐसे समय में सभी चाहते थे कि हम सेवा, उपासना कर ले और भगवान महावीर जो फरमा रहे है वह सुन लें। हस्तीपाल राजा ने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान लिया, समाधान हुआ कि वे जगत् बन गये, यह आप जानते हैं।

गये हैं। अब नहीं जाये तो बात बड़े पते की हो जाये। पर ये दुःख हमने भी बहुत भोगे हैं। इस प्रकार के दुःखों से संतप्त आत्मा कर्मबंध कर चतुर्गति में भ्रमण करने की स्थिति में रहेगी।

इस प्रकार दुःख का वर्णन सुन बहुत से राजाओं, सेठों एवं नर-नारियों ने प्रभु के चरणों में संयम स्वीकार करने की तैयारी कर ली। नवमल्ली, नवलच्छी राजा, चेड़ा, उदायी आदि भूपाल पहुँचे हुए थे। एक-एक शब्द कर्ण कुहरों में डालने की तैयारी में थे। ये अंतिम समवशरण है। फिर ये देशना हमें मिलना संभव नहीं है। सुन लें। जितना गागर को भरना है, भर लें, नहीं तो समवशरण पूर्ण हुआ नहीं, अमावस्या की यह अंधेरी रात्रि गई नहीं कि फिर ये अनमोल वाणी जो निरन्तर प्रवाहित होती रही है, मिल नहीं पाएगी। इसी भाव से सभी उपस्थित जन प्रभु की अमृतवाणी शांत भाव से सुन रहे थे। प्रभु महावीर ने सुखविपाक एवं दुःखविपाक के एक सौ बीस अध्ययनों का वहाँ विवेचन किया और फिर उसी के आगे उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्ययनों की विवेचना भी की। 36 अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व भगवान महावीर दुनिया को यह बताना चाहते थे कि मैं जा कहाँ रहा हूँ ये उसमें यथार्थता है। ये बातें शास्त्रों की ही नहीं, जीवन व्यवहार के लिए भी हैं, ये केवल प्रचार के लिए नहीं है। तीर्थंकरों की आकांक्षा नहीं थी कि वे केवल शोभा के लिये सिद्धान्त के रूप में बातें कहें। इसीलिये उन्होंने विनय की महिमा के प्रतिपादन से अपनी देशना प्रारम्भ की।

भगवान ने प्रारंभ करते हुए कहा-

संजोगाविष्णुमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।

विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुब्बिं सुणेह में॥

मैं साधु के विनय को कहूँगा। विनय कैसा होता है ? भगवान ने उसका प्रयोग करके दिखाया। यहाँ भी यद्यपि पुरानी परम्परा से थोड़ा मतभेद है। पुरानी मान्यता की बात अपनी जगह पर है कि जब भगवान महावीर ने देखा कि गौतम का मेरे प्रति धर्म-स्नेह है, राग भाव है, इसलिए राग भाव को दूर करने हेतु उन्हें देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध

देने भेजा। हालाँकि यह भी सही है कि उनका गुरु के प्रति अनुराग था, पर गुरु के प्रति अनुराग भाव ऊपर उठाने वाला होता है। उस राग में भी वैराग्य होता है। नहीं तो छठे गुणस्थान में कोई वैरागी नहीं हो पाएगा। जबकि छठे गुणस्थान में प्रत्याख्यान भी होते हैं, वैरागी भी होता है, किन्तु राग भी होता है। वह होता है देव का, गुरु का, धर्म का। वह राग हमारे भीतर त्याग-वैराग्य जगाता है, जबकि संसार का राग-विषय-कषाय जागृत करता है। इसलिए ऊपर के गुणस्थान में वह मोह का राग नहीं है, जो विषय-वासना जागृत करे। यहाँ जो राग है वह त्याग-वैराग्य प्राप्त कराता है।

बंधुओं ! इसे ऐसे समझें। जैसे भूमियाँ भूमि के रूप में सारी समान होती हैं, पर उनमें भी द्रव्य की अपेक्षा अन्तर होता है। कोई रेतीली भूमि होती है, तो कोई पथरीली काली मिट्टी रूप में भी होती है। जहाँ रेतीली भूमि होती है वहाँ बाजरा-मोठ पनपेगा और जहाँ काली चिकनी मिट्टी है वहाँ धान पैदा होगा। जमीन से जैसे पैदावार में अंतर पड़ता है, वैसे ही राग-राग में जो अंतर होता है उससे परिणाम में भिन्नता आती है। एक राग बंधन का कारण बनता है, दूसरा राग मधुर रस पैदा करता है, जिसे चखने पर व्यक्ति ऊपर बढ़ता है।

साधु जीवन खजूर का पेड़ है,

चढ़ने वाला प्रेम रस की अनुभूति करता है।

वह राग भाव एकदम त्याज्य नहीं कहा गया है। जैसे-जैसे आत्मा का उत्थान होता है, जैसे-जैसे वह ऊपर चढ़ता है, वैसे-वैसे नीचे की पगियाँ घटती जाती हैं और जैसे ही 12वें गुणस्थान को प्राप्त करता है, आत्मा वीतराग बन जाता है और आगे बढ़ता है तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाता है।

पहले की परम्परा रही थी कि गौतम स्वामी को राग था, इसलिए भगवान ने देव शर्मा को प्रतिबोध देने के लिए कहा। गौतम स्वामी पधार गये। ज्ञानियों के ज्ञान में कितनी गहराई होती है यह हम जान नहीं पाते हैं। हमारा उतना क्षयोपशम नहीं होता, किन्तु हम चिन्तन करते हैं कि उन महापुरुषों का यह चिन्तन रहा होगा कि जब वे विनय

धर्म का विवेचन करते हैं तो वे बताना चाहते हैं कि विनय क्या होता है और कैसे की जाती है विनय की साधना ? विनय की साधना नहीं हुई तो धर्म पैदा कैसे होगा ? यदि विनय नहीं होगा तो मोक्ष फल की प्रतिपत्ति भी नहीं होगी। विनय नहीं है तो कितनी ही औपचारिकताएँ निभा लो, कितनी ही कठोर साधना कर लो, कुछ नहीं फलित होने वाला है, क्योंकि शास्त्र में स्पष्ट कथन है और सबसे पहले कहा गया है कि विनय धर्म का मूल है। धर्म पेड़ है। उसका फल मोक्ष है। मैंने बताया था कि मोठ-बाजरी के लिए जमीन अलग प्रकार की होती है तथा अन्य फसलों के लिये अलग प्रकार की होती है। अन्नों में सबसे श्रेष्ठ चावल को माना गया है। उसके लिए जमीन कोमल होनी चाहिये। आसाम वाले चावल या धान की खेती के बारे में ज्यादा जानते हैं। दो बार उसकी बुवाई करते हैं। एक बार बीज डालते हैं फिर बाद में गीली-गीली भूमि में उन बीजों से निकले पौधों को वापस व्यवस्थित ढंग से रोपते हैं। तब जाकर श्रेष्ठ अन्न पैदा होता है। जैसे श्रेष्ठ अन्न के लिए कोमल भूमि चाहिये, वैसे ही धर्म के लिए संवेदनशील मनोभूमि की आवश्यकता होती है। उसे बनाने के लिए-

चरम समयं जाणी भगवंत

विनय धर्म है महिमावंत।

उसको पाले उत्तम संत....।

कथनी करनी हो इकरूप - प्रभुजी भाखियाजी हर एक के लिए विनय की पालना संभव नहीं है। नगी तलवार पर चलना फिर भी सरल है, पर विनय की धार पर चलना बड़ा टेढ़ा काम है।

विनय :- 'विगतः नयः यस्मात् इति विनयः।'

'नय' कहते हैं विचार के प्रवाह को। हमारे भीतर अनेक विचार प्रवाह हैं, वे सारे विचार प्रवाह जहाँ नष्ट हो जायें वहाँ विनय प्रकट होता है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है-

कहण्णु कुज्जा सामण्णं, जो काभे न निवारए

पए पए विसियन्तो, संकप्पस्स व संगओ.....।

ऐसा कैसे कह दिया। इतने लोगों के बीच मेरी इनसल्ट कर दी। यदि अपनी इनसल्ट मानते तो फिर विचारणीय यह भी होता है कि प्रतिष्ठा कब थी? प्रतिष्ठा देने वाले/प्रतिष्ठा दिलाने वाले कौन थे ? जो दिलाने वाले हैं वे इनसल्ट कैसे कर सकते हैं ? हमारी बुद्धि थोथी है। हम सार की बात पकड़ नहीं पाते हैं। इसलिए आनन्दधनजी कहते हैं-

तामसी वृत्ति सहुपरिहरे।

इन वृत्तियों को दूर करना होगा। ये दूर होंगी तभी धर्म की आराधना-साधना कर पाएंगे। नहीं तो हम केवल रेत में नाव चलाने की क्रिया कर रहे होंगे। पर रेत में नाव चलती नहीं है। हमें शांति प्राप्त करनी है तो हम किसी से तू-तू मैं-मैं में नहीं पड़ेंगे। शांति का इच्छुक बीच की प्रवृत्तियों में लगेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेव एक दृष्टान्त दिया करते थे- एक व्यक्ति को ज्ञात हो गया कि अभी अमुक जगह पहुँचे तो एक करोड़ प्राप्त हो सकते हैं और यदि एक सेकंड की भी देर की तो कुछ नहीं मिलेगा। वह रफ्तार से चला, सोचता जा रहा था कि यदि एक सेकंड भी लेट किया तो पहुँच नहीं पाऊँगा। ऐसी मानसिकता से यदि व्यक्ति जा रहा है और कोई उसके साथ गाली-गलौज करे, उस पर कीचड़ डाले तो क्या वह झगड़ा करने के लिए रुकेगा ? बताओ तो सही उसे क्या करना चाहिये ? आप कहेंगे चलते रहना चाहिये। किन्तु आप क्या कर रहे हैं ? क्या आप वीतरागता की ओर नहीं बढ़ रहे हैं। यदि बढ़ रहे हैं तो बीच में कोई आपके साथ अभद्र व्यवहार करे तो आप रुकेगे या बढ़ते रहेंगे ? विचार आपको करना है।

भगवान ने क्या कहा है ?

समयं गोयम मा पमायए।

क्या गौतम स्वामी बहुत प्रमादी थे ? यदि नहीं थे तो उनसे क्या कहा ? इसे समझिये। उनके कथन में गूढ़ दर्शन छिपा है। 'गो' अर्थात् इन्द्रियाँ और तम अर्थात् अंधकार। तो जो इन्द्रियों के अधिकार में पड़े है वास्तव में उनसे कहा है- प्रमाद में मत पड़ो। उनके कहने का अभिप्राय

यह है कि पहले से ही तुम इन्द्रियों के विषयों में पड़े हो, फिर प्रमाद में भी पड़ गये तो स्थिति चिन्ताजनक हो जायेगी। जैसे बंदर स्वभाव से ही चंचल है, फिर उसे शराब पिला दे और ऊपर से उसे बिच्छू काट जाये तो उसकी उछलकूद की जो स्थिति होगी वह दयनीय ही होगी। फिर वह हर किसी को परेशान करेगी। वैसे ही हम इन्द्रियों के अर्थों में मशगूल हो फिर प्रमाद की चादर भी ओढ़ ले तो चेतना का विकास कहाँ से होगा ? इसलिए भगवान का उपदेश ऐसी आत्माओं के लिए रहा है, “जागो ! ऐसे समय में न जगे तो फिर पश्चात्ताप ही रह जायेगा।” जैसे एक करोड़ पाने का कामार्थी मिट्टी फेंकने वाले का प्रतिकार नहीं करता, वैसे ही वीतरागता की कामना रखने वाला दुनिया की छल-छंदों में नहीं फँसता। अतः माया में उलझो मत। अर्जुन गाली-गलौज में नहीं उलझा, तब तो भगवान महावीर भी मौजूद थे। किसी ने पत्थर फेंके, पर उन्होंने शिकायत नहीं की। नहीं कहा- “भगवान ! आपके राज में ये कैसा अंधेर ! हमारी सुरक्षा नहीं है। ये कैसे सहन होगा ?” उन्होंने कोई शिकायत नहीं की। मैं अपने कर्मों का क्षय करूँगा, यदि ऐसी समभाव की स्थिति हो तो शांति कहाँ दूर है। तब तो मुक्ति हमारे लिए तैयार है, पर हमारी दृष्टि भी एकाग्र होनी चाहिये।

गुरु द्रोणाचार्य परीक्षा ले रहे थे। अर्जुन से पूछा- क्या देख रहे हो ? अर्जुन ने जब कहा- सिर्फ अपने लक्ष्य को। तब जाकर लक्ष्यवेध कर पाया। गौतम को लक्ष्य तक पहुँचना था। आज्ञा सुनते ही शिरोधार्य कर ली। उस विनय की उत्कृष्टता ने ही गौतम को उसी रात में केवलज्ञान प्राप्त करवा दिया।

मैं आपको भगवान के अंतिम समवशरण की बात बता रहा था। इधर गौतम स्वामी प्रतिबोध देने पहुँचे, उधर-

कार्तिक अमावस्या, पिछली रात।

स्वाति नक्षत्र शशि के साथ।

कार्तिक अमावस्या की रात्रि आ गई और चन्द्रमा के साथ स्वाति नक्षत्र का योग। आप कहेंगे अमावस्या और चन्द्रमा ? अमावस्या को चन्द्रमा दिखता है क्या ? नहीं। पर होता है। उसके साथ स्वाति नक्षत्र

5. अपुट्ठ बागरणा माहात्म्य

आज का प्रसंग सुविदित है। इस संप्रदाय की ये परम्परा रही है कि वीर निर्वाण के पश्चात् उत्तराध्ययन सूत्र का मूल रूप से वांचन किया जाता है। इसी उत्तराध्ययन की अर्थ रूप से प्रभु देशना देते हैं और जैसे ही ये पूर्ण होती है, प्रभु अपने अयोग अवस्था का रूप उपस्थित करने में लग जाते हैं। यहाँ वह अंतिम देशना थी, जिसे अपुट्ठ बागरणा भी कहा जाता है। अन्य शास्त्रों की प्रवृत्ति भिन्न रूप में हुई है कि गौतम ने पूछा और भगवान ने विवेचन किया। किन्तु इसके विषय में न तो प्रश्न पूछने की स्थिति रही, न ही जिज्ञासा प्रकट करने की। फिर भी समस्त शास्त्रों का निष्कर्ष निचोड़ भरकर ऐसी अपुट्ठ बागरणा प्रस्तुत की गई। इसमें द्रव्यानुयोग भी है, गणितानुयोग भी है, चरण-करणानुयोग भी है और धर्मकथानुयोग भी है। अनुयोग अर्थात् पूरे शास्त्रों को चार भागों में विभाजित किया गया है-

द्रव्यानुयोग- 6 द्रव्य, जीव-अजीव का विवेचन।

गणितानुयोग- सागरोपम, पल्योपम, जम्बूद्वीप, विमानों की लम्बाई, चौड़ाई आदि का विवेचन।

चरणकरणानुयोग- कैसा आचरण किया जाये, पाँच समिति, तीन गुप्ति और समाचारी का विवरण।

चरितानुयोग- जिसमें किसी चारित्र के माध्यम से उपदेश दिया गया हो। जैसे- नमिराजऋषि, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि के चरितानुयोग से सहज ही बोध प्राप्त हो सकता है। चरित को इनमें अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। नमि व शकेन्द्र का संवाद प्रमाणित करता है कि एक-एक महापुरुष कैसे विचारों से युक्त है। हरिकेशी श्वपाक-चाण्डाल कुल में जन्मे थे। पहले सभी उनसे नफरत करते थे। कारण, उनमें क्रोध था, परन्तु जब वे साधना पथ पर चल पड़े तो उच्च शिखर पर पहुँच

6. आद्याचार्य का अनुपम प्रदेय

आचार्य सुधर्मा पद महोत्सव

शांति जिन एक मुझ विनति।

शांति प्राप्त करने का अभिलाषी मनुष्य अनादिकाल से रहा है। लगातार अशांति के झूले में झूलते रहने के बाद भी उसकी शांति प्राप्ति की कामना कभी धूमिल नहीं हुई है। मनुष्य को अशांति से राहत दिलाने के लिये ही प्रभु महावीर ने केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति के बाद साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका के चार तीर्थों की स्थापना भी की। ताकि अशांति से उबरने के लिये शान्ति के मार्ग पर चलता हुआ साधक यदि कभी डाँवाडोल मनःस्थिति का शिकार बने तो उसको सहारा मिल सके। साधना व्यक्तिगत भी होती है और समष्टिगत भी। अपनी साधना व्यक्ति कहीं भी कर सकता है, किन्तु साधना का परीक्षण अकेले में तब तक हो नहीं पाता, जब तक दूसरी परिस्थिति सामने न आ जाये। संघ में व्यक्ति साधना भी करता है तथा परीक्षण की स्थिति भी उपस्थित पाता है, क्योंकि तब वह सामुदायिक अवस्था में रहता है, जिसमें अनेक उतार-चढ़ाव भी सामने आते हैं। कभी निन्दा, तो कभी स्तुति की स्थिति सामने आती है। तब यह अपेक्षित होता है कि साधक निन्दा में गमगीन न हो और स्तुतिपरक शब्द सुनकर मन में गौरवान्वित न हो। यदि निन्दा सुनकर खिन्नता और स्तुति सुनकर गौरव की अनुभूति होती है तो वह साधक जान सकता है कि अभी उसकी साधना में कितनी न्यूनता है। जो अकेले में साधना करने वाला है, कैसे जान सकता है कि कौन स्तुति कर रहा है और कौन निन्दा कर रहा है। जो विशिष्ट प्रतिज्ञा लेकर चलते हैं उनका कहीं कोई संबंध नहीं होता। उन्हें निन्दा स्तुति से कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे हर जगह साधना में निमग्न होते हैं। पर हर एक व्यक्ति वैसी साधना कर नहीं सकता। संघ में रहते

से साधुमार्गी संघ में और दूसरे संघों में भी कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म.सा. को नहीं जानने वाले बहुत कम होंगे। उनके साथ वे कुछ समय रहे। फिर जब आचार्यदेव भीनासर पधारे तब वे बहुत मुश्किल से वहाँ पहुँचे और तब नई दीक्षा देकर उन्हें संघ में सम्मिलित किया गया। ऐसा कार्य संघ में ही हो सकता है। जब ऐसी अवस्था आ जाये और व्यक्ति कुछ कर सकने की स्थिति में न हो, ऐसे समय में सेवा और सहायता की आवश्यकता होती है और वह समष्टि में ही संभव है। भगवान ने चार तीर्थों की स्थापना की है। जो समष्टि रूप है। प्रत्येक साधक संघ में रहकर आनन्दपूर्वक साधना कर सकता है।

जब तक स्वयं भगवान थे तब तक ग्यारह गणधरों के माध्यम से चतुर्विध संघ की सारणा-वारणा-धारणा होती रही। जब प्रभु ने देखा कि उनके प्रस्थान का समय नजदीक आ रहा है, तब चतुर्विध संघ की बागडोर उन्होंने समर्थ हाथों में सौंपने का निर्णय लिया। उसके लिए उन्होंने गणधर गौतम का नहीं, आर्य सुधर्मा का चयन किया। उस चयन से एक बात और स्पष्ट होती है, वह यह कि उस समय राजाओं का राज्य था और राजाओं के स्तर पर परम्परा इस प्रकार बनी हुई थी कि राजा का बड़ा पुत्र ही राजा के बाद राजा बन सकता था। भगवान महावीर ने इस परम्परा में यह संशोधन किया कि कोई आवश्यक नहीं कि राजा का बेटा ही या बड़ा बेटा ही उत्तराधिकारी हो। इसी प्रकार गुरु का बड़ा शिष्य ही उत्तराधिकारी बने यह आवश्यक नहीं। गुणकर्म के धरातल पर उन्होंने नई व्यवस्था दी। गणधर गौतम उस समय केवली नहीं हुए थे। उनके रहते हुए भी आर्य सुधर्मा को पद पर नियुक्त किया गया। ऐसा उल्लेख ऐतिहासिक विवरणों से प्राप्त होता है कि भगवान महावीर ने अपनी उपस्थिति में सुधर्मा स्वामी को गणाधिप/तीर्थाधिप/गण संघ के राजा आचार्य के रूप में नियुक्त किया। गणधर सत्तरी में यह उल्लेख मिलता है-

मज्झिमाए वीरेण सुहम्मो तित्थाहिवो संठविओ

मध्यम पावा के अन्तर्गत भगवान महावीर ने अग्निवेश्यायन

सुधर्मा को चतुर्विध संघ के आचार्य के रूप में, नेता के रूप में, आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके अतिरिक्त वीर वंश पदावली में भी उल्लेख मिलता है-
भवियजणेपडिबोहिय, बावत्तरि पालिऊण वारिखाइं,
सोहम्म गणहरस्स य पटटं दाउं सिवं पत्तो॥

भगवान महावीर ने भव्यजनो को प्रतिबोध देकर 72 वर्ष की आयु पालकर सुधर्मा को अपने पाट पर प्रतिष्ठित कर सिद्धि प्राप्त की।

यदि किसी की जिज्ञासा हो कि क्या भगवान महावीर ने स्वयं उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था या बाद में संघ ने उन्हें वह पद दिया ? परन्तु इन ऐतिहासिक तथ्यों में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान महावीर ने अपनी उपस्थिति में ही सुधर्मा स्वामी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। तीर्थंकरों के समय में ही गणधरों की व्यवस्था होती है। कभी कोई यह भी कहते हैं कि गणधर को ही आचार्य नहीं माना जाये। यदि गणधर ही आचार्य होते तो फिर भगवान महावीर को सुधर्मा को गणाधिप पद पर प्रतिष्ठित करने की कहाँ आवश्यकता रहती ? इससे स्पष्ट होता है कि गणधर आचार्य नहीं होते, किन्तु तीर्थंकरों के समय में गण की सार-संभाल करने वाले होते हैं। इसलिए उन्हें गणधर कहा जाता है। आचार्य संघ के स्वामी के रूप में होते हैं। इसलिए भगवान महावीर ने आर्य सुधर्मा को अपनी उपस्थिति में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। वह आचार्य पद की क्रियान्विति प्रभु निर्वाण के पश्चात् प्रतिपदा को होती है।

इस बार थोड़ा-सा अंतर पड़ गया, चतुदर्शी-अमावस्या का, इसलिए कल सूत्र वांचन हुआ, जबकि प्रतिपदा को ही वह वाचन होता है। तब उसी दिन आचार्य सुधर्मा के पद की बात कही जाती है। किन्तु इस बार हमे सहज ही अलग-अलग दिन मिल गये हैं, इसलिए विस्तार से उस प्रसंग का कथन करने में कुछ सुविधा बन गई। अस्तु, ये आचार्य परम्परा उनके समय से ही चलती रही है।

आचार्य सुधर्मा स्वामी का चतुर्विध संघ पर परम उपकार है।

उन्हीं के आधार पर हमे आज वीतराग वाणी शास्त्र रूप में उपलब्ध है। उन्होंने ही आर्य जम्बूस्वामी को उसकी वांचना दी थी। आर्य जम्बू ने वही वांचना अपने शिष्यों को दी। इस प्रकार यथाक्रम से वांचना चलती आ रही है और इसीलिये आज भी वे आगम सुरक्षित हैं और हमें साधना के लिए प्रेरणा देने वाले बने हैं। हम उनसे प्रेरणा ले सकते हैं।

इस संदर्भ में कुछ लोग जिज्ञासा प्रकट कर रहे हैं कि गणधर गौतम को आचार्य क्यों नहीं बनाया, जब जगह-जगह गौतम का नाम आ रहा है ? इसका समाधान यह है कि पृच्छा उन्होंने की, इसलिए नाम उनका आया वे प्रधानता से रहे इसलिए उनकी पृच्छा रही। फिर प्रभु महावीर के ज्ञान के सामने हमारे ज्ञान की कोई महत्ता नहीं है। हम अपने ज्ञान/क्षयोपशम के आधार पर ही विचार कर सकते हैं। एक अन्य बात यह थी कि गणधर गौतम को उसी रात को केवलज्ञान होने वाला था। दूसरी बात यह भी है कि भगवान महावीर परम्परा पुरुष नहीं थे, वे क्रांति पुरुष थे। जहाँ उन्होंने आवश्यकता समझी, वहाँ परम्परा का निर्वहन भी किया, किन्तु अनावश्यक परम्परा का बोझ ढोकर वे नहीं चले। उस समय की कई परम्पराओं पर उन्होंने अपने उपदेशों से प्रहार किया। तो इसे भी इस परम्परा पर प्रहार मानें कि राजा का बड़ा बेटा ही उसका उत्तराधिकारी होता है और वही अगला राजा बनता है। उन्होंने स्थापित किया कि राजा का बड़ा बेटा ही राजा नहीं बनता, बल्कि गुण-कर्म के आधार पर बड़े पुत्र के बदले किसी अपरिचित को भी गद्दी पर बिठाया जा सकता है।

उस समय दास के हाथ का ग्रहण करना भी वर्जित था। दास परम्परा की एक जटिल प्रथा थी। राजाओं में युद्ध होते थे। धन-माल-जन सबकुछ समेट लिया जाता था। व्यक्ति को बंदी बनाकर दूसरे स्थान पर बेच दिया जाता था। बंधुआ मजदूर से भी उनकी हालत बदतर हो जाती थी। बिकने वाले के माथे पर घास का पुला रखकर उसका विक्रय किया जाता था, फिर जो उसे खरीद कर ले जाता था, वह उसके साथ चाहे जैसा सलूक कर सकता था। दास को बोलने का कोई अधिकार नहीं था। भगवान महावीर ने इस प्रथा पर भी कड़ा प्रहार किया।

लगे तो क्या होता है ? जीभ कट जाती है। साता वेदनीय का स्वरूप है कि जो थोड़ी देर साता फिर मशगूल हो गये तो जैसे तलवार से जीभ कटने की स्थिति पैदा हो जाती है, वैसे ही जीवन में दर्द भी पैदा होने वाला है। इसलिए भगवान ने कर्म मात्र को दुःख की संज्ञा दी है और संसार में रहने वाले कर्म से स्वतः ही जुड़ जाते हैं, मुक्त नहीं रह पाते। इसलिए जम्बू कहते हैं- “माता ! एक दृष्टि से विचार करें तो मैं इतना दुःखी हूँ कि जिसकी तुलना नहीं की जा सकती।” मृगा पुत्र ने क्या बताया- “माता मुझे वे बातें नजर आ रही हैं जैसे बहिने साग-तरकारी सुधारती है तो उनके टुकड़े-टुकड़े करती है। वैसे ही नरक में परमाधर्मी देव शरीर के टुकड़े-टुकड़े करते हैं। जैसे कपड़ों को धोने के लिए धोबी पत्थर पर उन्हें पछीटता है। वैसे ही परमाधर्मी देव नैरयिक के पाँवों को पकड़कर शिलाओं पर पटकते हैं। तेल के कढ़ाह में जैसे पकौड़े तले जाते हैं, वैसे ही उन्हें तला जाता है।” मृगापुत्र को तला, हमें थोड़ी तला ? हम तो स्वर्ग की यात्रा करते रहे। हमने ऐसे कौनसे कार्य किये हैं, जो हमें नरक में जाना पड़ेगा। पर भूलना मत भगवान ने यह बात भी कही है कि संसार में रहने वाली ऐसी कोई आत्मा नहीं है, जिसने नरक गति के दुःखों का भोग नहीं किया हो और जिसने छठा आरा और निगोद में दुःख नहीं देखा हो। कैसी-कैसी योनियों में भ्रमण किया है इन आत्माओं ने ? ऊँची-ऊँची हवेलियाँ बनाकर मन में गौरव का अनुभव करे तो उनसे कहा जाता है- “ऊपर क्या मिलेगा ? उन विमानों में रहकर आये हो जो रत्नों के बने हुए हैं ?” जयपुर के मकान किसके बने हैं ? ईंट, पत्थर, चूने से। क्या ऐसे मकान भी हैं जो सोने की ईंटों से बने हों और जिनमें रत्न जड़े हुए हो ?

कहते हैं- शालिभद्र का मकान वैसा था। देखने वाले मानते थे कि हम स्वर्ग में आ गये हैं। पर इस संपत्ति को देख गौरव किया तो ज्ञानी कहते हैं ऊपर देख ले। सूर्य, चन्द्र, तारे तो देख ही रहे हो। इन विमानों में भी गये हो। क्या काम आये वे विमान। वे तो शाश्वत हैं, पर हम घूमते रह गये। कई बार इन विमानों में गये और इन बनाई गई हवेलियों में कितनी बार निवास होगा ? मुश्किल है, क्योंकि शरीर का काल सीमित है। ये हवेलियाँ रह जायेगी। पता नहीं कहाँ जन्म हो। कई बार कहा जाता है- धन-जन से ममत्व रहा तो कुतिया बनकर आ

जायेंगे। उस प्रकार आत्मा आ जाये तो बात अलग है। पर उसे यह बोध नहीं होगा कि इसी हवेली से रवाना हुए थे और इसी में आ गये। पर देवलोक को देखकर बोध हो सकता है कि पहले यहाँ रहकर गया हूँ। इसीलिये कहते हैं- ये चार दिन की चमक चाँदनी, फिर अंधेरी रात। जैसे ही आँख बंद हो जायेगी, कुछ नजर नहीं आएगा। जम्बू कहते हैं- "माता ! स्वर्ग में गया या नरक में, दुःख हर जगह रहा। नरक की याद से दुःख हुआ। देवलोक में गया, वहाँ से च्यवन का समय आ गया तो मन में बहुत दुःख हुआ कि हाय ! ऐसा विमान छोड़कर जाना पड़ेगा। इसलिए दुःखी हो गया। मैंने दुःख का बहुत वेदन किया है। यदि यहाँ भी ऐशो-आराम में लगा रहा तो आने वाला समय दुःखदायी होगा।

बंधुओं ! प्रेरणा हर समय मिलती है, पर हम नहीं लेते हैं, आँखें बंद कर लेते हैं। प्रतिदिन सूर्योदय होता है, फिर काली रात भी आती है। वैसे ही कहा है- चमक चाँदनी में उलझे हो काली रात भी बितानी पड़ेगी। यहाँ प्रकाश में हो, किन्तु फिर नरक में गये तो नरक-निगोद में काली रात है। किन्तु कभी-कभी हम कहते हैं- शुक्ल पक्ष भी होता है। जैसे- चाँदनी रात में चाँदनी रहती है, वह बताती है शुभ कर्म करें तो आने वाली जिन्दगी भी कैसी होगी ? ये बातें रोजमर्रा की हैं। जैसे इन्हें देखते हो वैसे ही शुक्ल पक्ष में चाँदनी है। पर ये नहीं जानते हैं कि पाँचम-छठ की चाँदनी कब तक ? जैसे पाँच-छः घंटे की चाँदनी, फिर अंधेरी। वैसे ही जब तक पुण्यप्रभा है तब तक प्रकाश, फिर अंधेरी। वैसे ही कहें कि दिन तो सूर्य की तरह तेजस्वी होता है, पर जैसे ही अस्त हो तो पूर्णिमा का चंद्र प्रकट हो जाये कि वहाँ भी प्रकाश रहे, जिन्दगी में अंधेरा आये ही नहीं। यदि ऐसा साधना का पुरुषार्थ कर लें तो ऐसी स्थिति भी बन सकती है।

जम्बू कहते हैं- मैंने बहुत दुःख देखे हैं और कुछ नहीं है तो-

जम्म दुक्खं जरा दुक्खे, रोगाणि मरणाणिद...

इनसे कोई मुक्त कर नहीं सकता। जन्म दुःख हुआ है, बुढ़ापा भी आएगा। शरीर है तो बीमारी भी आएगी। जब पाँवों में दर्द होगा, तब बड़ी कठिनाई से डंडा लेकर चलना पड़ेगा। ये औदारिक शरीर की परिणति है। जम्बू कहते हैं- "माता ! ये शरीर की प्रक्रियाएँ हैं जो देखते

यह लोगों को सफला देता था। उसने विद्या प्रयोग से सभी को सफला देया, पर जम्बू पर विद्या का प्रभाव नहीं हुआ। वे जागृत थे। जम्बू के इस चिन्तन से कि "धन आज की रात्रि न जाये तो अच्छा" चोरों के पैर चिपक गये। प्रभव विचार में पड़ गया कि मेरे भाईयों के पैर किसने चिपका दिये ? लगता है कोई जरूर मंत्र जानता है। वह खोज करता हुआ जम्बू के पास पहुँचा। उसने कहा- "आप जो पैर चिपकाने की विद्या जानते हैं, वह मैं भी सीखना चाहता हूँ। जंबू ने कहा- "मैं ऐसी कोई विद्या नहीं जानता। न ही चिपकाना चाहता हूँ। मैं तो उन्हें भी गति देना चाहता हूँ।

पैर चिपकाना क्या होता है, आप जानते हैं ? यह पैर चिपकाना ही मोह-माया है, जिससे हमारा छूटना आवश्यक है। आप इस गूढ़ अर्थ को समझें। अभी तो हालत यह है कि कहीं खबर मिल जाये कि दो दिनों की छूट है, जो चाहे जितना चाहे ले जाये तो पता नहीं कितनी धक्का-मुक्की और मारपीट होगी। ये पुद्गलों के प्रति आसक्ति है, वह चिपकाने वाली है।

प्रभव जम्बू के पास पहुँचा। जम्बू के एक उपदेश ने प्रभव को अंदर तक हिला दिया। प्रभव सहित पाँच सौ चौरों ने श्लेष्म की तरह सब छोड़ दिया। जम्बू के साथ ही दीक्षित होने को तैयार हो गये। माता-पिता, सास-ससुर, आठ रमणियो व पाँच सौ चोरों सहित वे पहुँचे सुधर्मा स्वामी के पास। निवेदन किया- "प्रभो ! संसार में आग झुलसा रही है। हमारी आत्मा विषय-वासना-कषाय में झुलस रही है। आप ही एकमात्र रक्षक हैं, आप ही एकमात्र आश्रय है, जो हमारी जलती हुई आत्मा को शांत-प्रशान्त कर सकते हैं। इसलिए भते ! हमें शरण दीजिये। सुधर्मा स्वामी ने उन्हें दीक्षित किया। कालान्तर में जंबू आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और 64 वर्ष पश्चात् मुक्ति में गये।

जम्बू स्वामी अंतिम केवली रहे। उनके पश्चात् पंचम आरे का जन्मा हुआ भक्ति मोक्ष की योग्यता हासिल कर नहीं पाता है। मोक्ष मार्ग बंद हो गया है ये मैं नहीं कहता। मोक्ष तो भरत से पाँचवे आरे में जाने में बाधा नहीं है। महाविदेह से कोई देव किसी संत को द्वेषवश लाकर यहाँ रख दे तो वह मोक्ष चला जाएगा। पर यहाँ का जन्मा इतनी योग्यता

7. सच्चा रक्षा-सूत्र

मात्र साता सुख हो, दुःख नहीं हो, द्वंद्व नहीं हो, द्वेष नहीं हो, और राग भी नहीं हो, ऐसा बहुत कम होता है। परन्तु ऐसा होना बहुत संभव है कि रागात्मक भाव व्यक्ति को प्रिय लगने लगें। यदि कोई व्यक्ति प्रेम से या स्नेह से बोलता है तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। यह भी राग का ही एक रूप है। जहाँ हम राग से खुश होते हैं तो वहाँ उस रागांश में सुख का अनुभव भी करते हैं। तब यह भी मान ले कि हम द्वेष का भी सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि इनका जोड़ा होता है। जैसे रात है तो दिन है, दिन है तो रात है। जैसे रात आने पर व्यक्ति विचार नहीं करता है कि रात है, क्योंकि वह जानता है यह सृष्टि का नियम है कि रात आयेगी और रात जायेगी तो दिन आयेगा। वैसे ही राग होने पर यह चिन्ता न करें कि द्वेष भी आयेगा। जब यह स्वाभाविक है तो फिर द्वेष, गाली-गलौज में दुःख क्यों करते हैं ? दिन, राग का रूप है और रात, द्वेष का रूप है। जब रात नहीं रहती है तो दिन भी कहाँ रहता है। यदि व्यक्ति इस एक सत्य को स्वीकार कर ले तो फिर दुःख-द्वंद्व में दुःखी न हो।

इस सदर्भ मे यह बात भली प्रकार से समझ लेने की है कि दुःख कहीं बाहर से नहीं है, अतः हमारे ही विचार हमे दुःख और हमारे ही विचार हमे प्रसन्नता प्रदान करने वाले बन जाते हैं।

आज कहते हैं- भाई दूज है तो कोई ऐतिहासिक या धार्मिक-पौराणिक परम्परा इसके पीछे रही होगी। कुछ प्रसंग रहे होंगे, जिन्हें बाद में भुला दिया गया और लकीर पीटने की स्थिति रह गई। प्रसंग जिस भावना और जिस प्रकार से बने हम आज उस भावना और प्रसंग के अनुसार आचरण नहीं कर रहे हैं। वर्तमान में तो एक परम्परा का निर्वाह ही हो रहा है। भाई को बहिन बुलाएंगी या भाई-बहिन को

नेह पाशा भयंकरा

दूसरे बंधन इतने भयंकर नहीं। स्नेह/राग का पाश याने बंधन/स्नेह के धागों का बंधन भयंकर है। आर्द्रकुमार पहले दीक्षित हुए। योगावली कर्म उदय मे आये। तो संसारी बनना पड़ा। फिर वापस वैराग्य जगा। पत्नी ने कहा- “मैं रोक नहीं सकती, पर मुझे चरखा ला दें तो मैं अपना जीवन उसके सहारे चला पाऊँगी।” वह चरखा लेकर सूत कात रही थी कि बच्चे ने पूछ लिया- “क्या कर रही हो ?” कहने लगी- “तुम्हारे पिता साधु बनना चाहते हैं, तो मैं अकेली जीवनयापन कैसे करूँगी ? मैं हाथ करघे के सहारे जीवनयापन करूँगी।” कहा जाता है, माता ने जो सूत काता था, वह बच्चे ने उठा लिया। पिता सोये थे, उनके पैरों में सूत के आँटे लगा दिये- “मैं जाने नहीं दूँगा।” वे स्नेह पाश मे इतने आबद्ध हो गये कि मन में प्रतिज्ञा कर ली कि जितने आँटे पड़े हैं, उतने वर्ष और रहूँगा और आँटे गिने तो कितने निकले ? बारह आँटे। ये है राग-भाव। ऐसे राग-भाव में हमारी आत्मा कितनी निमज्जित हुई है, विचार करें। किन्तु आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा ने जब दीक्षा की तैयारी की तो माँ ने कहा- “किसी भी हालत मे आज्ञा नहीं दूँगी।” बड़े लाड़ले थे। माता का इतना प्यार, आज कई भाई कहते हैं कि “भावना तो है पर माता का मोह है। माँ को कितनी पीड़ा होगी। इसलिए हिम्मत नहीं होती।” हिम्मत होना भी एक मायने रखता है। श्री श्रीलालजी म. सा मे हिम्मत थी। काफी समय तक समझने का प्रयत्न किया। नहीं मानी, तब अंततः चले गये और स्वयं दीक्षा ले ली।

अभयकुमार प्रभु महावीर की देशना से प्रतिबोधित हुए, श्रेणिक से कहा अनुमति दो। श्रेणिक ने कहा- अभी तो मेरा समय है। लेकिन नहीं माना तो कहा- जिस दिन मेरे मुँह से निकल जाये, “अभय यहाँ से चला जा, तब दीक्षा ले लेना।” और ऐसी घटना भी घट गई।

श्रेणिक चेलना के साथ निकले। एक साधु को शीत परिषद सहते देखा। रात को रजाई ओढ सोयी थी, उन्हें मुनि का स्मरण हुआ कि कैसे सदी सहन कर रहे होंगे ? उसके शब्द सुने तो श्रेणिक को लगा कि ये तो दुराचारिणी है, मैं इसे पतिव्रता समझता था। पर कोई ओर

लौट गई। उसकी खोज की गई पर वह तो मिली नहीं। भाई पुनः बहिन के घर गया। उसे मनाकर लाया, वह पर्व था दूज का। रूठी बहिन को मनाने का।

इस कथा को हम एक प्रतीक रूप में ले और इसके भाव को, हार्द्र को समझने का प्रयास करें। इससे कई बातें स्पष्ट होती हैं। चंवरी में वर-वधू बैठते हैं। वहाँ विचारों की स्थिति क्या होती है ? मोह का बंधन होता है। उस समय मोह की भंवरे पड़ती हैं। यदि उस समय ही सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था के मजबूत खंभे गाड़ दें तो मोह की भंवरे नहीं पड़े। भगवान महावीर की भी शादी हुई थी, पर मोह नहीं बढ़ा। दूसरी बात सुहाग रात की है, जिसमें आश्रव का सेवन होता है। वहाँ भी मोह विकराल रूप लेने वाला बनता है, उसे ही कालिन्दर सर्प समझे। कहा भी है मरणं बिन्दु पातेन, बिन्दुपात, वीर्य के एक बिन्दु का पतन जीवन का पतन करने वाला होता है। वह काल रूप होता है। मोह में व्यक्ति पड़ता है तो वहाँ कालिन्दर सर्प फुफकार करता है। भले उस दिन न मरे पर एक दृष्टि से मोह के कारण वह मर चुका होता है। इसलिए कहा उसे बींध दें। कितने भाई होंगे जो सुहाग रात में मोह से आवेष्टित न हों ? कई होते हैं, शादी होती है पर प्रतिज्ञा रहती है कि जब तक गुरुदेव के दर्शन न कर लें, ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। आज आप कहते हैं विजय सेठ - विजया सेठानी। एक के नियम था कृष्ण पक्ष का, एक के था शुक्ल पक्ष का। एक पलंग पर शयन करते। कथा में कहते हैं नंगी तलवार बीच में रखते थे वह बाहर की तलवार हो या न हो, किन्तु प्रतिज्ञा की नंगी तलवार थी। मन में भी कहीं भांगा लगा हो, ऐसा कथा में प्रतिपादित नहीं है। ब्रह्मचर्य की रक्षा की। बड़े-बड़े अजगर डस नहीं पाये। भीष्म प्रतिज्ञा इसे कहते हैं। आयु मुट्ठी में बद। वे चाहे तो मरें, नहीं तो मरे नहीं। हालांकि मरण निश्चित है।

भीष्म पितामह के प्रतीक को भी समझिये। भीष्म मरणासन्न अवस्था में कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पड़े हैं। वे कहते हैं- "खाट चाहिये। अर्जुन ने तीर चलाये और बाणों की शय्या तैयार कर दी। उसी पर उन्होंने मृत्यु प्राप्त की। उन्होंने कहा- "मैं खाट पर मरूँ ? मैं वीर हूँ।" वीर की शय्या कैसी होती है ? अर्जुन ने उनके भाव को समझा। उसने

वीर शय्या बना दी। भीष्म पितामह ने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य की पालना की थी। उनके सामने कोई टिक नहीं सकता था। आप कहेंगे वे तो दुर्योधन की तरफ थे, फिर दुर्योधन की हार कैसे हुई ? युधिष्ठिर मैदान में आये और तत्काल रथ से उतरे। आचार्य के पास पहुँचे और कहा- “मुझे युद्ध की आज्ञा दीजिये। द्रोण के पास पहुँचे और उनका आशीर्वाद लिया। फिर भीष्म पितामह के पास पहुँचे, उनसे आशीर्वाद लिया। शरीर से तो वे सभी दुर्योधन के साथ थे पर आशीर्वाद युधिष्ठिर को ही दिया। सभी ने कहा- तुम्हारी जय हो। यह तो नहीं कहा कि ‘मरो’। उनके मुँह से क्या निकला ? आशीर्वाद का शब्द। आज व्यक्ति माता-पिता के चरणों में नमस्कार नहीं करता। नमस्कार करने की भी पूरी विधि है। माथे को नमाकर चरणों में समर्पित करिये, फिर देखिये कैसे आशीर्वाद निकलता है। दुर्योधन की हार का कारण क्या था ? सहस्रो योद्धाओं के होते हुए भी वह हार गया, क्योंकि युधिष्ठिर को आशीर्वाद प्राप्त था, दुर्योधन को प्राप्त नहीं था, इसलिए हार गया। जिन्होंने जीत का आशीर्वाद दिया वे हराते कैसे ? भीष्म, द्रोणचार्य हरा नहीं सकते थे। वे युद्ध में हराने की स्थिति में नहीं आ सकते थे, क्योंकि आशीर्वाद दे चुके थे। शरीर दुर्योधन के साथ था, पर मन जिसके साथ था जीत उधर की ही होनी थी। ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत को भीष्म ने धारण किया था। एक बूंद गिरने नहीं दी थी। ऐसा वीर अकाल मृत्यु का वरण नहीं कर सकता था। यह है ब्रह्मचर्य की महिमा। ये हम कथाओं से समझें यही सुनने का तो सार है अन्यथा सुनना कोई मायने नहीं रखता।

पूर्व की कथा के भाव को, संदेश को, हार्द्र को समझें। उस बहिन ने बीच में पड़कर माता-पिता का आक्रोश सहन किया था। ऐसे प्रसंग पर बहिन ढाल बनकर रहे तो बहिन होने की सार्थकता है। नहीं तो भाई के पास पैसा रहे तो-

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यूँ कहे, सबसे बड़ा रुपैया॥

माँ भी तब तक प्रेम देगी, जब तक बेटा लाकर दे। बहिन को दे तो कहेंगी, मेरा भैया, मेरा भैया और जिस दिन भाई की हालत बदतर हो जाये और बहिन के यहाँ पहुँच जाये तो पीछे के रास्ते से प्रवेश मिले,

न भी मिले। गरीब भाई को प्रवेश तो दे दिया, फिर क्या हुआ ? तीन दिन की सूखी रोटी दी। भाई चबा नहीं पाया। वही तोड़कर गाड़ दी और वहाँ से चला गया। कुछ वर्षों पश्चात् एक दिन वापस आया। बहिन ने उसका आगमन सुना पहले तो अनसुना कर दिया, पर जब ज्ञात हुआ कि वह तो बहुत धन-माल-लाव-लशकर के साथ आया है, तो बहिन बधाकर घर ले आई और मनुहार, खातिर में लग गई। तब भाई ने दिखाई- “बहिन ये सूखी रोटी।” जब तक संपत्ति है सारे अपने हैं, किन्तु जब संकट की घड़ियाँ आती है तभी पहचान होती है कि कौन अपना है और कौन पराया है ?

यहाँ पर किसी से पूछ लें, कौन है आपका ? यहाँ तो कहेंगे- “कोई कोनी।” यहाँ से निकले, फिर क्या कहेंगे-

मेरा है सो मेरा है, तेरा भी मेरा है।

और खा पीकर ऐसी डकार लेंगे कि अजीर्ण-आफरा भी नहीं हो। ऐसे मुँह पोंछ लेंगे कि कोई जान न पाये। इस मोह परम्परा को त्यागिये, वीतराग वाणी की आराधना का लक्ष्य बनाईये, फिर देखिये जीवन कितना सुन्दर बनता है।

पर्व की आराधना चेतन आत्मा से करें, केवल कलेवर को महत्त्व न दें। चेतना को कब अपना पायेंगे इस पर चिन्तन-मनन करें। ध्यान रखिये चेतना को महत्त्व देंगे तो धन्य-धन्य हो जाएंगे। मैंने आपके सामने भाईदूज के पर्व के संदर्भ से चेताने वाली कुछ बातें रखी हैं। सुनने से ही ज्ञान होता है- कल्याण का और पाप को भी सुनकर ही जान पाते हैं। सुनाने के बाद जो श्रेयष्कर लगे उसे स्वीकार कर जीवन में उसका अनुसरण करने वाले लोग ही प्रबुद्ध और चेतन्यता का अनुभव कर सकते हैं। आप भी चेतन्यता का अनुभव करें। भाईदूज के प्रसंग से आप तदनुसार आचरण करेंगे, ऐसा विश्वास है।

प्रति मेरा लगाव है। उसी कारण दुर्ध्यान आते हैं। गला घोटने के विचार आये, इससे निकृष्ट विचार क्या हो सकते हैं और वे भी सामायिक मे, उपासना में बैठे हों तब ? यदि ये भाव उपासना में भी बने तो निंदनीय है और बिना उपासना के बने तो भी वे तिर्यच गति के मेहमान बनाने वाले हैं। उनसे कभी ऊर्ध्व गति संभव नहीं हो सकती है। उसने प्रत्याख्यान ले लिये। लेने के पश्चात् उसे हल्कापन महसूस हुआ। जब तक व्यक्ति त्याग नहीं करता। सोचता रहता है ऐसे ही चला लूँगा तब तक उसे न शांति मिलती है, न ही चित्त मे हल्कापन आता है। भूलो मत, ये कीटाणु पड़ा रहा तो कभी भी उछाला खा सकता है। डॉक्टर ऑपरेशन करने वाले जान लें कि कैंसर है तो वे एक भी कीटाणु नहीं छोड़ेंगे। जब तक चाकू नहीं लगा तब तक वे धीरे-धीरे बढ़ते हैं। पर एक बार चाकू लग गया, फिर तीव्रता से बढ़ने लगते हैं। प्रतिज्ञा न लो तो अंतर में वे विचार दुबके रहेंगे और जैसे ही थोड़ा सा प्रसंग भी मिला कि उछाला खाएंगे। पुराने श्रावक जो जान चुके थे वे पैसों को परमात्मा नहीं मानते थे। तभी तो आज के व्यक्ति का चित्रण करते हुए शांत-क्रांति के अग्रदूत गणेशाचार्य कहते थे-

पड़सो म्हारो परमेश्वर, लुगाई म्हारी गुरु।

छोरा-छोरी शालिग्राम, सेवा थारी करूँ॥

और इसी की सेवा-उपासना। बच्चे शालिग्राम हैं, पत्नी गुरु है। उन्हीं का लालन-पालन मेरे जीवन की आराधना-साधना है, किन्तु पहले के श्रावक जो सर्वथा जाग चुके होते थे, वे संपत्ति का भाव चित्त पर जमने नहीं देते थे। उसे आदान-प्रदान, व्यवहार का साधन मानकर चलते थे, जिससे विचारों में मलीनता आने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता था।

मैं युवक के प्रत्याख्यान ले लेने के बाद की मानसिकता का वर्णन कर चुका हूँ। मैंने युवक से संबंधित घटना भी विशेष प्रयोजन से आपको सुनाई है। मैंने अपनी बात निर्मलता और मलीनता की स्थितियों से प्रारम्भ की थी। साथ ही मैंने बाह्य और आंतरिक मलीनता की विवेचना भी की थी। उस युवक के प्रसंग से मैं आपके सामने यह स्पष्ट

हो जाती है। यहाँ आप बाह्य मलीनता अथवा निर्मलता का संबंध रूप, वस्त्र अथवा परिग्रह की निर्मलता और सरूपता से न जोड़ें। निर्मलता के संदर्भ में बाह्य निर्मलता का संबंध इन्द्रियों की चेष्टाओं अथवा क्रियाओं से जुड़ता है। हम कैसा बोलते हैं, क्या सुनते हैं, किन भोगों में लिप्त रहना चाहते हैं तथा ऐसी ही प्रवृत्तियाँ बाह्य निर्मलता-मलीनता की स्थिति का निर्धारण करती है। आप इस सत्य से भी परिचित हैं कि हमारी बाह्य क्रियाएँ या प्रवृत्तियाँ मन से अथवा अंतर की वृत्तियों से प्रेरित, संचालित एवं नियंत्रित होती हैं। तो जब अंतर निर्मल होगा तो बाह्य निर्मलता स्वतः ही सुनिश्चित हो जायेगी। इसलिये यदि आप धर्म के मार्ग पर चलकर आश्रवद्वारों, कर्मबंध के हेतुओं का निरोध कर मोक्ष की दिशा में गति करने की अभिलाषा रखते हैं, तो आंतरिक निर्मलता प्राप्त करने के लिये प्रतिबद्ध हों अन्यथा आप कबीर की उस फटकार के अधिकारी बन जायेंगे, जो उन्होंने बाह्य निर्मलता की चिन्ता करने वालों को दी थी-

न्हाये धोये क्या भया, मन का मैल न जाय।

मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय॥

आप विवेकवान श्रावक हैं, स्वयं ही निर्मलता की प्रकृति को समझने में अब आपको कोई कठिनाई नहीं होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

30.10.2000



9. पुरुषार्थ का पर्याय

(पूज्य ज्योतिर्धर जवाहराचार्य की 126वीं जन्म-जयंती पर विशेष प्रवचन)

यह महत्त्वपूर्ण बात आपने सुनी होगी कि किसानों के यहाँ लुखी रोटी प्राप्त होती है और सेठों के यहाँ चुपड़ी हुई। इसका तात्पर्य क्या है ? सेठों को क्यों उस पर धी लगाने की आवश्यकता पड़ जाती है ? चिकनी करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? सोचने की बात है। आप सोचिये ! पता नहीं आपकी सोच क्या होगी, पर मैं इस प्रश्न का समाधान आगे दूँगा।

शांति की हम बात करते हैं, शांतिनाथ भगवान की स्मृति भी करते हैं, किन्तु शांति छाया की तरह आगे से आगे भागती रहती है और हम उसे प्राप्त नहीं कर पाते हैं। हमारी सारी दौड़ निरर्थक चली जाती है। इसका कारण जब तक हम शांति के स्वरूप को सही तरीके से नहीं समझ लेते हैं, तब-तक शांति प्राप्त नहीं होगी। शांति के स्वरूप को समझ नहीं पाने की स्थिति में यदि वह प्राप्त हो भी जाये, तो हम कैसे समझेंगे कि वह शांति है। जैसे- किसी को हीरा प्राप्त हो जाये पर वह हीरे का पारखी न हो तो वह हीरे को भी सामान्य पत्थर समझकर चिड़िया उड़ाने में फेक देगा। वैसे ही वह भी शांति की अवस्था का लाभ उठा नहीं पायेगा, क्योंकि वह जानता ही नहीं होगा कि वह विशिष्ट मानसिक स्थिति उसे किसी बड़े सौभाग्य से मिली है। उस स्थिति में वह शान्ति का सुख भी उठा नहीं पायेगा।

आज युगदृष्टा, युगसृष्टा पूज्य जवाहराचार्य का 126वां जन्म दिवस है, अर्थात् आज 125 वर्ष पूर्ण हुए हैं और आज ही 126वां वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। उनसे संबंधित बहुत सी बातें आपने पूर्व वक्ताओं से सुनी हैं, पर जितनी भी सुनी वे कम ही होगी। परदों पर भी आप देखते हैं, लिखा है, "थाँदला में जन्म हुआ।" हम किसी व्यक्ति को देख रहे

कैची चाकू आदि तेज हो जाते हैं और जैसे सूई की नोक तीखी होने से वह कपड़े में झट घुस जाती है, वैसे ही बाधा व्यक्ति को नई धार देती है, ताकि वह नये जोश से गतिशील हो सकें। कायर के लिए जो बाधा पहाड़ बनती है, जिन्हें वह लाँघ नहीं पाता वे ही पुरुषार्थी के लिए चुनौतियाँ बन जाती हैं। उसका एक ही लक्ष्य रहता है- चरैवेति-चरैवेति चलते चलो जो कदम आगे बढ़ा दिये, बढ़ाते चलो।

जो बड़े कदम वे ना पीछे हटेंगे।

महावीर के हम सिपाही बनेंगे....।

पर महावीर का सिपाही बनना मामूली बात नहीं है। पहले लोग कहते थे कि सवा हाथ का कलेजा चाहिए, तब जाकर पुलिस में देश रक्षा के लिए भरती हो सकती है। उनके लिये कलेजे का नाप लेते हैं या नहीं ? वहाँ हर किसी को भर्ती नहीं किया जाता। तो फिर महावीर का सिपाही बनना कैसे सरल हो सकता है ? नंगी तलवार की धार प चलना फिर भी सरल है, किन्तु महावीर का सिपाही बनना बहुत कठिन है। वहाँ नंगी तलवार पर हंसते-हंसते चलना होगा और मन में विचार भी पैदा नहीं होना चाहिये कि नगी तलवार पर पैर रखा तो पैर में घाव हो जायेगा। क्या स्थिति बनेगी ? जो ऐसा सोचेगा वह वहीं किनारे पर रुक जायेगा, धार पर चढ़ नहीं पाएगा। महावीर का सिपाही बन नहीं पाएगा। महावीर का सिपाही वही बन सकता है जो यदि कदम बढ़ा ले तो पीछे हटायें नहीं।

जवाहर बन गये महावीर के सिपाही, हो गई उनकी दीक्षा श्री मगनमलजी महाराज के पास। किन्तु कर्मों का संयोग या प्रकृति का टेक- गुरु का भी वियोग हो गया। प्रकृति कहती है, कितनी की ह सहायता ले ले, पर पुरुषार्थ तो तुझे ही करना है। तू किसी सहारे का खोज मत कर। तू कैसे मान रहा है कि तू बेसहारा है ? उस समय एक झटका भी लगा। मस्तिष्क में यह विचार बैठ गया था कि गुरु बिन ज्ञान नहीं मिलता, मेरे गुरु नहीं रहे, अब कौन ज्ञान देगा, किससे बोध मिलेगा ? कौन सारणा-वारणा-धारणा से जीवन का नक्शा तैयार करेगा ? मैं नगुरा हो गया। नगुरे का मोक्ष मार्ग पर बढ़ने का, मंजिल पाने

लिये, जिससे यह लाभ हुआ। मैंने अपनी आँखों से देखा तो इतने जीव व पत्थर निकले। वकील साहब कहने लगे- महापुरुषों के वचनों में कितना गहरा रहस्य छुपा होता है। उन्होंने प्रत्याख्यान तो पत्थर के करवाये पर मेरी आँखें खोल दीं। आज तक आँखें बंद थी। पेट क्या है ? जैसे बड़े शहरो में कचरा-पेटियो पर लिखा रहता है- 'यूज मी', मुझे यूज करिये, जो चाहो डाल दो। भाव नहीं है, पर समय हो गया है। अंदर से पेट लाल झंडी दिखा दे तो भी उसे कहेंगे- रुक जा। जैसे कोई किराये की बस ले जाये, जिसमे जगह नहीं बचे तो भी पीछे लटक कर और जहाँ 50-50 की जगह हो वहाँ 70-75 भरकर ले जाते हैं। संतोष नहीं होता, यही हालत पेट की है। चार की खुराक है पर एक-आध चीज ऐसी आ गई, जो जीभ को अच्छी लगे उतारते चले जाएंगे। पेट कहे अब नहीं, किन्तु नई चीज आ गई, मन कहेगा थोड़ा तो ले लो। लाल झंडी भी हटा दो, अभी तो चलने दो। ऐसी हालत पेट की बना रखी है, फिर कहे बीमारी न हो। बीमारी नहीं आएगी तो क्या होगा ?

मूल बात पर आईये, आचार्य जवाहर ने छोटी वय में जो अनुभव किया उसे धर्म से जोड़कर विवेचन दो। कोई सोचे कि रसोई बनायेगे तो पाप होगा इसलिए दूसरे से बनवा लिया जाये तो पाप नहीं होगा, यह चिन्तन ही भ्रामक है। क्योंकि करना भी पाप है, कराना भी पाप है और अनुमोदन भी पाप है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि करने से कराने में पाप ज्यादा हो। मैं आपको एक वकील साहब का उदाहरण दे चुका हूँ। अविवेकी से काम करवाया तो ज्यादा पाप की संभावना रहती है।

जवाहर की प्रखर प्रतिभा ने उनके सोच को वैज्ञानिक बनाया था। उन्होने कहा- मुझे अपने संतो को पढ़ाना है, क्योंकि यदि शास्त्र का ज्ञान साधु को नहीं होगा तो साधु आचरण कैसे कर पाएगा ? उन्होने समय की नब्ज पहचानी। पंडितों से साधुओं के अध्ययन की व्यवस्था की। पू. श्री गणेशीलालजी म.सा. व श्री घासीलालजी म.सा. अध्ययन कर प्रकाण्ड विद्वान् बने। अपेक्षित अध्ययन के अभाव में हम लकीर के फकीर बनकर रह जाते हैं। परन्तु उनका यह दृष्टिकोण रहा था कि गृहस्थ पंडित अक्षर का ज्ञान तो दे सकता है, किन्तु आगमिक रहस्यो

का सही चयन कर दे। इसलिए एक आचार्य से दूसरे आचार्य का दीप जलता चला जाता है। आचार्य के दीप से फिर कितने दीप जलते हैं ? आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. विचार करते हैं कि किन सशक्त हाथों में बागडोर सौंपी जाये। चारों ओर दृष्टि डाली तो दृष्टि कहाँ गई ? मुनि जवाहर पर। वे महाराष्ट्र में विचर रहे थे। वहाँ रतलाम के भाई वर्धमानजी पितलिया एवं बालचन्दजी श्री श्रीमाल पहुँचे। मुनि जवाहर को आश्चर्य हुआ। आज ये ! ये सहसा आते नहीं है, आज आये हैं मतलब कोई न कोई बात है। उन्होंने बातचीत की और बताया कि आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म सा. ने आपको युवाचार्य बनाने का विचार किया है। मुनि जवाहर ने कहा- "मुझमें ऐसी योग्यता, क्षमता सामर्थ्य नहीं है। मैं ऐसे विशाल संघ को चलाने का साहस जुटा नहीं पाता हूँ।" उन्होंने कहा- आचार्यश्री की आज्ञा को आप कैसे ठुकरा सकते हैं। आप आचार्यश्री की आज्ञा मानते हैं या अनाधिकार चेष्टा करना चाहते हैं ? ये आचार्यश्री की आज्ञा है, पालन करना विनयवान का कर्तव्य होता है।" श्री जवाहरलालजी म सा. ने कहा- आज्ञा सिर माथे पर है, पर जब तक मैं उनके दर्शन न कर लूँ निर्णय स्थगित।"

वे विहार करके पधारते हैं। इधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. उदयपुर से विहार करते हैं, मुनि जवाहर महाराष्ट्र से विहार करते हुए पहुँचे हैं, रत्नपुरी। आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. सामने आये, आचार्य जवाहर को आने में विलम्ब हुआ, क्योंकि मार्ग लंबा था। मुनि जवाहर के रत्नपुरी में प्रवेश के समय अनेक संत अगवानी के लिए पहुँचे। जैसे ही जवाहर को देखा और वे जैसे ही पू श्री श्रीलालजी म.सा को वदन करने के लिये तैयार हुए वैसे ही श्री श्रीलालजी म सा ने कहा- "जवाहर ! महाराष्ट्र जाकर मुझे भूल ही गया।" और उठाकर बाहो में भर लिया। जिन नेत्रों ने वो दृश्य देखा वो कहते हैं कि हजारों हजार नेत्र रूप कैमरे उस दृश्य को हृदय पर अंकित कर रहे थे। ये था आत्मीय वात्सल्य भाव। मुनि जवाहर को अगवानी कर लाये, फिर चतुर्विंद संघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। बातचीत हुई। मुनि जवाहर ने कहा कि मुझे माफ करें, जो सक्षम हो उसे सभलाईये, मेरे में सामर्थ्य नहीं है।"

नया सब खराब है। पुराने में अच्छाई है तो वह स्वीकार की जानी चाहिये। परन्तु यदि कोई सोचे मुझे नये को ही अपनाना है या मुझे पुराने से ही चिपक कर बैठे रहना है, तो वहाँ मामला गड़बड़ में पड़ जायेगा।

मैं वर्तमान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहता हूँ। वर्तमान युग में मीडिया का प्रभाव तेज रफ्तार से बढ़ रहा है। उसकी शक्ति और प्रभावशीलता के गुण बहुत गाये जा रहे हैं। प्रचार-प्रसार का वह एक प्रभावी माध्यम है। इसलिये कई भाई कहते हैं- महाराज ! आधुनिक प्रचार-प्रसार के साधनों को स्वीकार करें अन्यथा पिछड़ जाओगे। तो क्या इसीलिये मीडिया के विभिन्न साधनों का उपयोग या प्रयोग आरंभ कर दें ? स्वीकार कर ले ? क्या टी.वी. पर आ जाने से शांति मिल जायेगी ? पक्की बात है ? तब यदि अपनाने से शांति मिलने वाली नहीं तो फिर उसे अपनाने की आवश्यकता कहाँ पड़ गई ? हम मूल लक्ष्य से हट गये हैं। सत्य तो यह है कि मूल्य ही समाप्त हो गये हैं। मूल्यों का आधार ही समाप्त हो जाये तो आगे की अवस्था परिष्कृत कैसे रह सकती है ? आगे से आगे बदलाव आये तो क्या हम बदलते चले जाएँ ? बदलते-बदलते कहाँ पहुँच जायेगे यह सोचा है कभी ? यदि बदलने से शांति मिलती तो कभी की शांति मिल गई होती। हमने बहुत बदलाव कर लिये हैं। पहले के जमाने में धोती पहनने वालों की बहुलता थी। अंग्रेजों के सम्पर्क में आ गये तो बात बदल गई। आज सूट-सफारी आ गई है। पहले जमीन पर गादी बिछती थी, उस पर बैठते थे। सामने बाजोट होता था, जिस पर थाली परोसी जाती थी। अकेले भोजन की परम्परा कम थी, परिवार के साथ बैठकर भोजन करते थे। पर बदलाव आ गया कुर्सी-डाइनिंग टेबल आ गई। भोजन के साधन बदल गये। पहले हाथ से खाते थे, अब चम्मच, छुरी-कॉटे भी आ गये। पहले के भोज्य पदार्थों में भी परिवर्तन हो गया, पर क्या इस परिवर्तन से चित्त में शांति आ पाई ? संतोष आ पाया ? यदि सर्वे किया जाये तो लगेगा कि 50 वर्ष पहले व्यक्ति जितने सुखी-संतोषी थे, उतने आज नहीं है। भले ही पैसा/सम्पत्ति बढ़ गई हो किन्तु जितनी सम्पत्ति बढ़ी है, उतनी ही साथ में हाय-हाय भी बढ़ी है। फिर परिवर्तन से क्या लाभ मिला ? यदि पुराने को छोड़ नया अपनाना है तो पहले देखो कि नये

निमित्त काम नहीं कर पाता। यही हालत वरदत्त के साथ बनी। उपाय किये गये, पर कारगर नहीं हुए। अजितसेन व्यथित होते थे। लोगों को मुँह दिखाने में शर्म आती थी। उसे अंदर ही रखा जाता था। राजसभा में प्रवेश नहीं करवाते थे कि लोग पूछेंगे तो सम्राट की बेइज्जती होगी। अतः चार दीवारी में ही पालन हो रहा था। धीरे-धीरे समय निकल रहा था कि अनायास ही विजयसेन गणि का नगर में आगमन हुआ। उद्यान पालक से जानकारी मिली। वे धुरन्धर ज्ञानी थे। अतः सम्राट गुरुचरणों में पहुँचे।

बधुओं ! गुरुचरणों में आने के कई कारण होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है- केशी-गौतम का मिलन हुआ। वहाँ अनेक पाखण्डी, कौतुकी मृगा, गृहस्थ एवं साहसिक उपस्थित हुए। संत चरण में जिज्ञासु आते हैं तत्त्व बातों सुनने को। सामान्यजन दर्शन हेतु आते हैं और कोई कौतुक से भी आते थे कि देखें वहाँ क्या वार्ता-चर्चा होती है। होता क्या है, आप जानते हैं-

ज्ञानी से ज्ञानी मिले करे ज्ञान की बात।

मूरख से मूरख मिले कै घूँसा कै लात॥

कई लोगों का अपना दुःख-दर्द, आर्तभाव रहता है, वे सोचते हैं संत वाणी सार्थक होती है। क्या जाने कौन-सी वाणी कब निकल जाये। सोचकर निकालने की बात अलग है, पर सहज निकल जाये और झेलने वाला झेल ले तो कहते हैं संत वाचा खाली नहीं जाती, वह पूर्ण होकर रहती है। एक दृष्टांत सुनिये।

कुछ बच्चे खेल रहे थे। एक बालक हारने के कारण निराश हो रहा था। उधर से एक संत निकल रहे थे उन्होंने सहसा कह दिया- कर पुरुषार्थ जीत जायेगा। महाराज ने तो बच्चों के लिए कहा था, पर उधर से एक सम्राट भी निकल रहे थे। उन्होंने सोचा महाराज ने उनसे कहा है, "कर पुरुषार्थ"। उसने युद्ध में जमकर पुरुषार्थ किया और विजय प्राप्त कर ली। वापस आया तो चरणों में पहुँचकर कहने लगा- "गुरुदेव! आपकी कृपा से जीत गया"। महाराज ने कहा- "मैंने आपसे कब कहा था ? मैंने तो बच्चे के लिए कहा था।" यह है वचनगुप्ति का दोष। इसलिए कहा गया है कि साधु को सावधानी से वाणी का प्रयोग करना

चाहिये। पता नहीं वचन के पीछे कैसी स्थिति बन जाये।

मैं बात कह रहा था कि झेलने वाला झेल ले तो काम बन जाता है। अजितसेन ने सोचा, चलो वाणी सुनेंगे, संभव है प्रसंग निकल जाये और राजकुमार के विषय में कोई तथ्य उजागर हो जाये और पता चल जाये कि क्या कारण है जो वह बोलता नहीं हैं। अजितसेन ने भावपूर्वक व्याख्यान सुना, फिर निवेदन किया- “भगवन् ! और कोई दुःख नहीं है, जनता आज्ञा का पालन करती है। जैसा चाहता हूँ वैसा जनता का आचरण है। धन-वैभव की भी कमी नहीं है, परन्तु एक कमी अखरती है। मेरे पुत्र है, किन्तु बोल नहीं पाता। क्या कारण हैं ?” आचार्य ने कहा- “राजन् ! जैसे-जैसे कर्म किये हुए होते हैं, वैसे-वैसे उदय मे आते है। तुम्हारा पुत्र भी कर्मोदय के कारण बोल नहीं पा रहा है।”

अजितसेन ने पुनः निवेदन किया- ‘गुरुदेव ! इतने में संतोष नहीं होता। सभी जानते है कर्मों का उदय है, पर ये उदय हुआ कैसे ? आप जैसे विशिष्ट ज्ञानी से जानकारी चाहता हूँ।” मुनिदेव ने उत्तर दिया- “श्रीपुर में वसुश्रेष्ठी निवास करते थे। उनके पुत्र थे- वसुसार और वसुदेव। दोनों की जुगल जोड़ी जन-जन को प्रमुदित करने वाली थी। दोनों का प्रेम इतना गहरा था कि दोनो दो देहों में एक प्राण बनकर रहते थे। उनका प्रेम-सौहार्द देख माता-पिता भी खुश होते थे। जिधर जायें रौनक आ जाती थी। संयोग बना कि सुन्दरसेन गणि पधारे। उनके अमृतवचन/जिनवाणी कुमारों ने सुनी। उन्होंने विचार किया यही वाणी एकमात्र सार है। यह भवसागर से पार कराने वाली नैया है। यह वाणी सार है, आधार है। जो स्वीकार करे, इधर-उधर नही भटकें, तो निश्चित रूप से यह पार लगायेगी” परन्तु एक तरफ जिनवाणी की नाव ले और दूसरी तरफ इधर-उधर मन डोलावे तो काम नहीं होता।

जैन कुल मे जन्म लेने मात्र से हमने यह मान लिया हो कि हम जैनी हैं तो यह मान्यता जन्मना हो सकती है, कर्मणा नहीं। कर्मणा जैनी वह है जो निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही अर्थ मानता है, उसी पर दृढ़ आस्था रखता है। जैसे कुलवधु की दृष्टि अपने पति पर ही होती है, अन्यथा नहीं।

- आज से किसी को पढ़ाऊँगा नहीं।
- कोई प्रश्न पूछेगा तो समाधान दूँगा नहीं।
- कोई मिथ्यामति मिथ्यामत से प्ररूपणा करे भी तो मैं खंडन करूँगा नहीं।
- उपदेश नहीं दूँगा।
- समाधान नहीं करूँगा।
- ज्ञान का अनुमोदन नहीं करूँगा।
- स्वाध्याय नहीं करूँगा।

ऐसी सात प्रतिज्ञाएँ उन्होने धारण कर लीं और इस प्रकार ज्ञानावरणीय का प्रभाव बंध कर लिया।

राजा अजितसेन को इतनी कथा सुनाकर मुनि विजयसेन गणि ने कहा- राजन् ! देखिये, समय और कर्म की महिमा ! कोई कर्म व्यक्ति का जिस समय उदय मे आता है उस समय वह व्यक्ति पेरशान हो जाता है। बांधते समय सोचता नही है कि मै क्या कर रहा हूँ, पर जब वह उदय मे आता है तब लगता है कि मैंने क्या कर लिया। तब रोने से क्या लाभ ? तब रोने से क्या कोई मतलब निकलने वाला है ? राजन् ! इन्हीं कर्मों के फलस्वरूप ही वह एक ही शब्द बोल नही पाता है। इसलिए ज्ञानीजन कहते है ज्ञान की, ज्ञानीजनों की अवज्ञा, उनका तिरस्कार मत करो। जो ज्ञान पाना चाहते हैं उन्हें ज्ञान के साधन उपलब्ध कराओ। ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखो। जातियों की उपासना करो तो ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होगा। पर यदि विपरीत करे तो ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होगा।

राजा ने कहा- गुरुदेव ! उसने बंध तो कर लिया, आपने बीमारी तो बता दी, पर सफल चिकित्सक वह नहीं है जो बीमारी बताकर कह दे- लाईलाज है ! सफल चिकित्सक वह है जो बीमारी को बताकर चिकित्सा कर बीमारी दूर भी करे। अतः भगवन् । आप ही बताये इस

11. पात्रता हो आधार

आद्य-तीर्थकर प्रभु ऋषभदेव ने वर्ण व्यवस्था का रूप उपस्थित किया था। इतिहास बतलाता है कि उन्होंने तीन वर्णों की व्यवस्था की थी- क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र किन्तु उसके पश्चात् जब भरत चक्रवर्ती ने देखा कि कई पुरुष ऐसे भी हैं जो संसार की विषय वासना के कीचड़ से निर्लिप्त रहते हैं और सांसारिक कार्यों में कोई रुचि नहीं रखते तो उन्होंने एक वर्ण की व्यवस्था और बढ़ा दी। उस वर्ण का नाम उन्होंने रखा- माहण = ब्राह्मण, अर्थात् जो उपदेश देता हो और यह भाव लेकर चलता हो- “मा हणू” अर्थात् किसी की हिंसा मतकर। इस प्रकार चार वर्णों की व्यवस्था हुई।

हम विचार करे कि चार वर्णों की व्यवस्था के पीछे कारण क्या है ? कारण है उसके पीछे छिपा भाव, जो कहता है- तू आत्मा की शांति जब प्राप्त करेगा तब करेगा किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में तू दुःखी न रहे और व्यवस्थित रूप से तेरे जैसे प्रत्येक का जीवन चलता रहे। सभी व्यक्तियों की शक्ति एक समान नहीं होती। कोई व्यक्ति शस्त्र चलाने में सक्षम होता है तो कोई सेवा करने में माहिर होता है। सेवा करने वाले से शस्त्र उठाने के लिये कहे तो उसके लिए बड़ी विडम्बना की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। एक डॉक्टर जो आँख के रोगों का विशेषज्ञ है, उससे यदि कहे कि मुझे कैंसर की बीमारी है, आप ऑपरेशन कर दे। तो वह कहेगा, इसका ज्ञाता जो है उसके पास जाओ। स्पष्ट है कि कैंसर की बीमारी का इलाज उसका विषय नहीं है। जो विषय जिसका नहीं है वह यदि उसमें हाथ डालता है तो वह किसी का हित कर पायेगा ऐसा कहना कठिन है। आँख का डॉक्टर कैंसर का व कैंसर का डॉक्टर हार्ट का इलाज करने लगे तो रोगी की क्या हालत होगी। उसके क्या

जिन्दगी रहेगी। उसकी जिन्दगी तो पूर्णतः अकारथ हो जाती है। इसलिए ब्रह्मचर्य के सही स्वरूप को हम बारीकी से समझें। जिसने मन से कभी दूषित चिन्तन नहीं किया, कान कभी मोहक वाणी से प्रभावित नहीं हुए, आँख से कभी मोहक छवि नहीं देखी, नाक से उत्तेजक गंध नहीं सूंघी, स्वादों के प्रति जो कभी आकर्षित नहीं हुआ और स्पर्शजन्य सुख की जिसने कभी कामना नहीं की, वह होता है सच्चा ब्रह्मचारी और उसके आचरण में प्रकट होता है ब्रह्मचर्य का सच्चा एवं पूर्ण स्वरूप। यद्यपि क्षत्रिय इतना पूर्ण नहीं फिर भी ऐतिहासिक कथा प्रसंग यह तो स्पष्ट करते ही हैं कि सम्राट का शयन अलग स्थान पर तथा महारानी का शयन अलग स्थान पर होता था। क्यों होता था ? कारण स्पष्ट है यदि बिन्दुपात निरन्तर होता रहे तो जीवन में अपेक्षित ओजस्विता शौर्य और तेजस्विता सुरक्षित नहीं रह सकती। जिस शासनाध्यक्ष में ये नहीं रह पाये, वह कायर बन जाएगा, फिर वह दूसरों की रक्षा क्या कर पाएगा ? ऐसा क्षीण मनोबल शासक दूसरों की रक्षा करना तो दूर स्वयं ही आक्रामक से रक्षा के लिये भागने की कोशिश करेगा।

एक युवक एक संत के पास पहुँचा और कहने लगा- “जीने का तरीका बताये।” संत ने कहा- “यदि जीने का तरीका जानना चाहते हो तो एक बार भी ब्रह्मचर्य खंडित नहीं करना।” उसने कहा- ऐसे कैसे जिन्दगी गुजार पाऊँगा ? ऐसा तो संभव नहीं है।” संत ने कहा- “इतना नहीं कर सकता तो केवल एक बार से अधिक नहीं।” कहा जाता है शेर जीवन में केवल एक बार अब्रह्म का सेवन करता है परिणामस्वरूप वैसे ही पराक्रमी सिंह की पैदाइश होती है अन्यथा संभव नहीं। युवक ने किंचित् संकोच से अपनी समस्या रखी- ऐसा भी संभव नहीं हो सकेगा।” संत ने कहा- “तो फिर वर्ष में एक बार से अधिक नहीं।” युवक ने कहा- “यह भी कठिन है, यह भी नहीं हो सकता। थोड़ी और छूट दीजिये।” संत ने कहा- “वर्ष में एक बार, नहीं तो माह में एक बार से अधिक नहीं।” युवक ने कहा- “गुरुदेव ! यह भी नहीं हो सकता।” संत ने निर्णयात्मक उत्तर दिया यह भी नहीं हो सकता तो तुम्हारी मर्जी हो वैसा करना, पर ध्यान रखना कि कफन का कपड़ा हर समय घर में

मौजूद रहे, क्या जाने किस समय जरूरत पड़ जाये।”

**मरणं बिन्दु पातेन्
जीवनं बिन्दु धारणात्।**

ध्यान रखिये, आपका पूरा जीवन ही वीर्य है। आँख, कान, नाक, ये सभी वीर्य हैं। उस एक बिन्दु से पूरा निर्माण हुआ है। जिस एक बिन्दु से निर्माण हुआ है, उसी के कारण ओज है, तेज है, शक्ति है। उसी से नया-प्रोडक्शन हो रहा है। वह समाप्त हो जायेगा तो फिर काम तमाम। आँखों के नीचे गड़ढे पड़ जायेंगे और चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ जायेगी। वीर्य की रक्षा नहीं की तो आँख, कान, नाक में कभी भी गड़बड़ी आ सकती है। ज्ञानियों ने यहाँ तक कहा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला चाहे तो ब्रह्माण्ड को हिला सकता है।

अर्जुन ब्रह्मचर्य को धारण कर तपोमय जीवन जी रहा था। इन्द्र के मन में भय पैदा हो गया पता नहीं क्या हो जाये ? कहीं मेरा राज्य न चला जाये। पर अर्जुन हिला नहीं। इन्द्र ने रंभा को संबोधित किया। वह अर्जुन के पास पहुँचकर नाज-नखरे दिखाकर उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु वह हिला नहीं, निष्कंप, अडोल चलता रहा। रंभा में माता की छवि देखकर उसे लगा जैसे कि एक माता अपने पुत्र को मना रही है। परन्तु जब रंभा ने खुले रूप से प्रस्ताव रखा तो अर्जुन ने कहा- “मातेश्वरी । तुम्हारा रूप देख मेरे मन में विचार आता है कि ऐसी ही रूपवती माता से यदि मेरा जन्म हुआ होता तो मेरे जीवन की कुछ और ही स्थिति होती।” यह सुन रंभा परास्त हो गई और इन्द्र के पास लौटकर वह कहने लगी- “मुझे कहीं भेजा, मुझे तो वह माता के समान मानता है।”

भीष्म पितामह ने भी ऐसी ही दृढ़ता का प्रमाण दिया था। कई लोग उनके पास पहुँचे और बोले- आप समाज का हित नहीं कर रहे हैं। भीष्म ने कहा- मैं हित कैसे नहीं कर रहा हूँ ? उन्होंने कहा- “आप ब्रह्मचारी हैं।” आप जानते हैं कि भीष्म गंगा के पुत्र थे और पिता के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार करके चले थे। लोगों ने तर्क दिया-

करता है तो भगवान कहते हैं वह दुर्लभबोधि बन जाता है। उन देवों का यदि कोई अवर्णवाद करे तो कालान्तर में उसे बोध मिलना तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र का संयोग मिलना कठिन हो जाता है। इस ब्रह्मचर्य की महिमा केवल जैन शास्त्रों में ही नहीं मानी गई है, वैदिक ग्रंथों में भी उसे महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। यह दृष्टांत सुनिये।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश को ज्ञात हुआ कि अनुसूया एक परम पतिव्रता नारी है। वह पर पुरुष को देखती तक नहीं है, परन्तु घर आये अतिथि को खाली भी नहीं लौटाती है। उन्होंने योजना बनाई कि ऐसे समय वहाँ चलें जब उसका पति मौजूद नहीं हो। अतः वे पति की अनुपस्थिति में उसके घर पहुँचे। उन्होंने जिद की कि उसके हाथ से ही दान लेंगे। वैदिक ग्रंथों में बताया गया है कि अनुसूया किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई, परन्तु उसके शील तथा पतिव्रत धर्म ने ऐसा प्रभाव दिखाया कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों छोटे-छोटे बालक के रूप में आ गये। अनुसूया ने सहज भाव से उनकी इच्छा के अनुसार परोसगारी कर दी। बच्चा तो बच्चा ही होता है, उसके सम्मुख संकोच कैसा ? यह था चमत्कार, आप कहेंगे यह कैसे हो गया ? ऐसा होता है। जब किसी व्रत का पूरी निष्ठा से पालन किया जाता है तब चमत्कार होते हैं।

आपने और भी कथाएँ सुनी होंगी। अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध में जाने की तैयारी करते समय पत्नी गुलाब का फूल देती है और कहती है- "यह कुम्हलाने लगे तो समझ लेना मेरे पर संकट आ रहा है।" ऐसा शौर्य होता है उन सतियों का, जिन्होंने शील धर्म का पालन किया हो। ऐसे ही ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना भी की जाती है। उसके लिए भगवान कहते हैं-

तवेसु उत्तमं बम्भचरं।

बारह प्रकार की तपस्याओं में से कोई भी तपस्या स्वीकार कर लो, पर यदि ब्रह्मचर्य सही-सलामत नहीं है तो कोई भी तपस्या सफल नहीं हो सकती चाहे अनशन हो, चाहे ऊनोदरी हो। ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं है तो कहीं भी सफलता नहीं मिल पाएगी, न तो खाने में सतोष होगा



न ही वह भिक्षाचर्या कर पाएगा। आसान नहीं भिक्षाचर्या, बहुत कठिन व्रत है। किसी के सामने हाथ पसारना सहज नहीं है। कहा गया है-

मांगण वाला मर गया।

पहले मरना पड़ता है। ऊपर से भले मरे न मरे, पर अहं को मारना ही पड़ता है। उसे जो नहीं मारता तो वह जैन विधि से तो भिक्षाचर्या कर नहीं सकता। मान लो कोई कह दे निकल जा यहाँ से तो ऐसे समय में उसे शान्त रहना होता है। यह नहीं कि वह उत्तेजित हो जाये और जवाब देने लगे कि किसको बोल रहा है ? तो यह उचित नहीं है। कोई चक्रवर्ती सम्राट दीक्षित हो जाये। पहले उसके यहाँ रहने वाली दासी भी कुछ कह दे तो कहा गया है कि वहाँ भी उतार-चढ़ाव नहीं लाना है। ये है मरने का रूप। जो ऐसी बात सुनने का आदी नहीं है, ऐसी स्थिति आये तो उसे भी मान को मारना पड़ेगा, तभी वह भिक्षाचर्या कर पाएगा। वहाँ भी पाँचों इन्द्रियों को मरना पड़ता है। अनेक घरों में जाना पड़ता है तो यह नहीं देखना होता है कि कैसी पोशाक बहन ने पहन रखी है, कैसे अलंकारों से वह सज्जित है। पूज्य गुरुदेव फरमाते थे- गोचरी जाने वाले को गाय की तरह होना चाहिये। गाय ये नहीं देखती कि मुझे बांटा कौन दे रहा है, देने वाला कितने आभूषण पहने हुए है, उसका वर्ण-सौन्दर्य कैसा है। गाय आभूषण, पोशाक, कपड़े को नहीं देखती। वह सिर्फ बांटे को देखती है। इसलिये साधु भी इधर-उधर आँखे फाड़कर नहीं देखे, न ही बहराने वाले को निहारे। उसकी दृष्टि एक मात्र असणं पाणं खाइमं साइमं पर टिकी रहनी चाहिये। मात्र शुद्धाशुद्धि की गवेषणा करे तो वह भिक्षाचर्या का रूप बनता है। क्या इसमें ब्रह्मचर्य नहीं है ? और एक-एक तप की प्रवृत्ति को गहराई से देखे तो उसमें कहीं न कहीं ब्रह्मचर्य अवश्य मिलेगा। यदि नहीं हो तो वह तपस्या सध नहीं पाएगी। इसीलिये ब्रह्मचर्य तपों में उत्तम है। ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्ययुक्त जीवन का व्यक्ति आज जिस रूप में उपयोग कर रहा है उस पर पीड़ा होती है। यह तो वैसी ही बात है जैसे बहुत कीमती सेन्ट, जिसकी एक बोतल के लगभग लाख रुपये लग जाते हैं। उस इत्र को कोई गारे में डाल दे या गधे के चोपड़ दे। क्या कहेंगे उसे ? बोलने

है उसमें प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती है तो ही बीमारी का प्रभाव होता है। प्रतिरोधक क्षमता ही मुख्य बात है। वह है तो बीमारी हो नहीं सकती। वैसे ही मन बलवान है, संयम से पुष्ट है, तो वहाँ कायरता आ नहीं सकती। उस पर यदि ब्रह्मचर्य का पुट है तो कोई भी प्रहार कामयाब नहीं हो सकता। क्षत्रिय इसी कारण से युद्ध क्षेत्र में टिक पाता है।

मैं चार वर्णों की व्यवस्था के संदर्भ में आपसे कुछ बातें कर रहा था। उसे भूले नहीं होंगे। वर्ण व्यवस्था को गौण करके अयोग्य व्यक्तियों को जो जिसमें परिणत नहीं है उसे उस कार्य में नियोजित करने से 'आप डूबे पाण्डियो ले डूबे यजमान' की कहावत को चरितार्थ करने जैसी स्थिति है। इस संदर्भ में चिंतनीय अनेक बिन्दु हैं। चाहे वह डॉक्टरों का क्षेत्र हो, चाहे इंजीनियरों का क्षेत्र, 80, 90 प्रतिशत अक प्राप्त बैठे रहें और 40 प्रतिशत वाले अधिकारी बन बैठे तो उनसे क्या आशा की जा सकती है। आप स्वयं चिंतन करें व इस स्थिति में कैसे सुधार हो सकता है इस दिशा में सशस्त कदम बढ़ा सकें तो राष्ट्रहित के साथ-साथ आत्म समाधि को भी प्राप्त किया जा सकता है।

2.11.2000



12. मन बने निर्ग्रन्थ

शांति जिन एक मुझ विनती सुनो....

शांति की प्राप्ति अंतर भावों में परिवर्तन के द्वारा ही संभव है क्योंकि यदि भावनाएँ एक रूप में हो और क्रियाएँ भिन्न रूप में तो द्वंद्व की ऐसी अवस्था निर्मित हो जाती है जिसमें शांति मिल नहीं सकती। परन्तु विडम्बना यह है कि अधिकांशतया शांति की कामना करने वाले ऐसे द्वंद्व की स्थिति में ही चलते रहते हैं। अंतर में विचार कुछ होते हैं और क्रियाएँ उनसे भिन्न हो जाती हैं। क्रियाएँ भिन्न हो जाती हैं तो दोनों में सामंजस्य हो नहीं पाता है। सामंजस्य हो नहीं पाता है तो हम अपनी मनोभूमिका में विषमता के बीज डाल देते हैं। ये ही विषमता के बीज जब बढ़ने लगते हैं तब दिशामूढ़ अवस्था बन जाती है। ऐसी अवस्था में मनुष्य सोचता कुछ है, पर कर कुछ और जाता है। इसके पीछे कुछ कारण हैं, उन पर विचार करें। कई बार व्यक्ति कहता है- “मैंने सोचा ही नहीं था कि ऐसा हो जाएगा ! क्यों हो गया ?” इसलिये हो गया क्योंकि अनादि से द्वंद्व की रफ्तार पड़ी हुई है। रफ्तार पड़ी हुई होने से सोचें नहीं सोचे तो भी हमारी गाड़ी उधर ही बढ़ती चली जाती है। यह अवस्था आप पशु में भी देख सकते हैं। एक गाय लंबे समय तक जिस घर में रही होती है, कालान्तर में उसे बेच दें, खरीदने वाला उसे ले भी जाये, पर जैसे ही गाय को मौका मिलता है, लगाव किधर होता है ? पूर्व घर की ओर लगाव हो या न हो पर वह मार्ग या स्थान परिचित होता है। इसलिए उसे अपने पूर्व घर आने में विशेष प्रयास करना नहीं पड़ता है। जिस मालिक ने उसे खरीदा होता है वह उसे रस्सी बांधकर भले ले जाये, पर स्वतः वह नहीं जाती है। वही दशा हमारे मन की बनी हुई है। अनादिकाल से जो हमारे संस्कार पड़े हैं, उस दिशा में हम गतिशील हो जाते हैं, पर जिस दिशा में करवाना चाहते हैं उस दिशा में पुरुषार्थ लगाना

7. समुद्र को भुजाओं से तैरकर पार करते देखा।
 8. मेरु पर्वत को अपनी आँतों से आवेष्टित देखा।
 9. उदयमान सूर्य को आलोक करते देखा।
 10. मेरु पर स्वयं को आरोहण करते देखा।
- उसके पश्चात् प्रतिबुद्धता की स्थिति बन गई।

वहाँ इन स्वप्नो के अर्थ भी बतलाये गये हैं। पिशाच के रूप में भगवान ने मोहनीय कर्म को पछाड़ा/क्षय किया। श्वेत कोकिल के रूप में श्रुत की विविधता का प्रतिपादन किया। दैदीप्यमान दो रत्नमालाओं का अर्थ वहाँ नहीं बताया गया है। श्वेत गौ वर्ण के दर्शन का गूढ़ प्रतिकात्मक अर्थ है कि गौ के चार स्तन होते हैं। जैसे उनमें दूध भरा रहता है, वैसे ही गुण समूह का पात्र चार तीर्थ है जो अमृत लिये हुए रहेंगे। उनके समान ही चतुर्विध तीर्थ अपने आप में पावन-पवित्र होता है, जिनकी पूजा-अर्चना करने वाले भी संसार से तिर जाते हैं। केवल साधु-साध्वी का ही नहीं, किन्तु श्रावक-श्राविका का आश्रय लेकर भी संसार से तिरा जा सकता है। किन्तु तब जब साधु या श्रावक अनर्गल बाते न करे। यह नहीं कि जहाँ बीज भी नहीं हो वहाँ वे पेड़ बता दे। कई पत्रकारों और राजनेताओं की ऐसी ही आदत होती है। जहाँ सूखा पड़ा है वहाँ वे मानसून बना सकते हैं। ऐसा यदि श्रावक और साधु भी करें तो समझ लेना चाहिये कि वे हकीकत में साधु जीवन की मूल अवस्था का स्पर्श भी नहीं कर पाये हैं। इसलिए यहाँ बताया है कि जैसे गौ स्तन अमृत से भरे होते हैं, वैसे ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप अमृत से तीर्थ भी भरे होते हैं।

छठे स्वप्न में भगवान ने पद्म सरोवर देखा था। इसका प्रतिकार्य था कि चार जाति के देव भगवान की सेवा करेंगे। समुद्र को भुजाओं से तैरकर पार करते देखने का निहितार्थ था कि भगवान संसार सागर को अपने पौरुष से तैरकर पार करेंगे। उदीयमान सूर्य भगवान के केवलज्ञान की प्राप्ति का संकेत कर रहा था। मेरु पर्वत पर चढ़ने और सिंहासन पर बैठने का अर्थ यह ले कि वे समवशरण में उपदेश देंगे।

इस प्रकार निश्चित रूप से स्वप्नो के अर्थ बताने में मैं समर्थ

नहीं तथापि निहित अर्थों के आधार पर मैंने व्याख्या की है। रत्नमालाओं को दो प्रकार के धर्म- 1. आगार धर्म, 2. अणगार धर्म का प्ररूपणा का प्रतीक माना जा सकता है। जैसे रत्नमालाएँ गले में सुशोभित होती हैं वैसे ही वे दो धर्म व्यक्ति के जीवन को सुशोभित एवं सुव्यवस्थित कर सकते हैं।

भगवान महावीर ने अपनी चेतना को पूर्णतः निर्मल-ग्रन्थिहीन रखा था तभी तो वे निर्ग्रन्थ कहलाये। पर हम हैं कि ग्रंथि को कसते जाते हैं। कसी हुई ग्रंथि या ग्रंथि पर लगी हुई ग्रंथि को खोलना कठिन होता है। मैंने अभी कहा था कि यदि चेतना पर थोड़ा-सा भी जमाव हो तो उस पर क्रमशः और जमाव होता जायेगा। जमाव से उसे मुक्त रखने का एक ही मार्ग है- चित्त की सतह को पूर्णतः परिष्कृत एवं चिकना रख जाये ताकि सम्पर्क में जो कुछ भी आये, जमे नहीं, फिसल जाये और सतह पूर्णतः निर्मल बनी रहे।

मैंने निर्मल दर्पण की बात भी कही थी। दर्पण जब तक अपने ऊपर कुछ जमाता नहीं तब तक ही उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखता है। ऐसी निर्मल सतह या ऐसा निर्मल मन जो मोह माया और ग्रन्थियों से मुक्त होता है, वही मुक्ति तक पहुँचा सकता है, केवल अच्छी करना या अच्छे कर्म से ही मुक्ति संभव नहीं है। मोह माया से मुक्ति और ग्रन्थिभेदन प्रथम आवश्यकता हैं। यही द्वंद्व की स्थिति से मुक्ति का मार्ग है और द्वंद्वों से मुक्ति ही शांति की स्थिति है। अतः हम चित्त को निर्मल बनाने का प्रयत्न करें। चित्त-शुद्धि होगी तो आत्मशांति प्राप्त हो सकती है। तीर्थंकर देवों की आज्ञा की पालना करें वही मूल है। मूल को नहीं छोड़ें। कषाय को कम करने का प्रयत्न करें। यदि कषाय की वृद्धि की तो कुछ भी करें, कहीं भी चले जायें, चाहे जंगल में, निर्जन में चले जाये, तो भी शांति नहीं मिलेगी। शांति मिलेगी मन को पूर्णतः संकल्प-विकल्प-मुक्त रखने से ही। भगवान के उपदेश को गहराई से समझें और उसके अनुसार आचरण करें, हमारा जीवन धन्य होगा।

13. अहं तज अहं बनो

कुंथु जिन मनहू किम ही न बाजे.....

शांति की प्राप्ति के लिए सोपानों की चर्चा करते समय जो विषय हमारे सामने आते हैं उनमें मन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। मन को हम टिकाने का प्रयास करते हैं, लगाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु ये मन बेकाबू है, किस क्षण किधर निकल जाये, पता ही नहीं चलता। मन की यह भी एक बड़ी शिकायत है। यह शिकायत कवि की हो रही हो ऐसी बात नहीं है, साधको की तो यह आम शिकायत रही है। चाहे साधक चरमशरीरी हो या गुफाओं में साधना कर रहा हो। मन की अवस्था किसी को भी कही से कही पहुँचा देती है।

अरिष्टनेमि के भ्राता रथनेमि गुफा में साधना कर रहे थे। राजीमति उधर से निकली। वर्षा के कारण भीग गई थी। देखा यह गुफा है, कपडो को सुखा लूं। प्रकाश से गुफा में अंधकारयुक्त प्रभाव से प्रवेश करने पर भीतर कौन है ज्ञात नहीं हो पाता। राजीमति को भी ज्ञात नहीं हो पाया। वह कपडे उतारकर सुखाने का उपक्रम करने लगी। गुफा में पूर्व से रथनेमि ध्यान में स्थित थे। मन को साधना में लगाये हुए थे। किन्तु शास्त्रकार कहते हैं- रहनेमी भग्गचित्तो पच्छा दिट्ठो य तीइ विजो मन ध्यान साधना में लगा था, वह कहाँ चला गया ? नथनेमि कोई सामान्य साधक नहीं थे। चरमशरीरी थे किन्तु मन की अवस्था क्या भरोसा ? इसलिये कोई यह न समझ ले कि मैं इसी भव में मुक्त होने वाला हूँ, मेरा मन इधर-उधर नहीं हो सकता।

मन की अवस्था चलायमान कर देती है। इसलिए कवि कहते हैं- भगवन् ! इस मन की क्या बात करूँ ? कितना ही समझाने का

अवस्था में मरकर क्या बना ? सर्प बना।

पूर्व के भव का उसका नाम था कौशिक और अब चंड अवस्था थी इसलिए नाम पड़ा चण्डकौशिक। अपने आश्रम से अपार मोह था। इस कारण उसी वन प्रान्त में सर्प बन गया। अब भी उसमें किसी को प्रवेश नहीं करने देता था। पहले मानव के रूप में, अब जन्तु के रूप में सबका काल बन रहा था। भगवान महावीर भी उसी वन-प्रान्त से होकर गुजर रहे थे। खतरा था किन्तु खतरे से महावीर घबरा जायें तो महावीर कैसे ? आज के बच्चों का नाम भले महावीर रख दें किन्तु बिल्ली घूर कर देख ले तो रोने लगेंगे क्योंकि मम्मी ऐसे संस्कार देती हैं पर महावीर कहाँ भयभीत होने वाले थे। कोई उनके निमित्त से कष्ट पाये तो भले चले जाये, पर उन्हें भय दिखाकर मार्ग नहीं पलटाय जा सकता था। तभी वे आचारांग में बोल सके-

सव्वओ पमत्तस्स भयं सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं।

अप्रमादी को कहीं कोई भय हो नहीं सकता। वे निर्भयता से आगे बढ़ते रहे। दूर से ही चंडकौशिक ने देखा। आज ये हिम्मत करके कौन बढ़ा चला आ रहा है ? दूर से दृष्टि प्रक्षेप किया, पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कोई फर्क नहीं दिखा। वे तो बांबी पर ध्यान लगाकर खड़े थे। आँखों में आँखे डालीं, पर कोई प्रभाव नहीं। बल्कि उनकी आँखों से अमृत टपक रहा था, करुणा का वर्षण हो रहा था। फिर भी वह शांत नहीं हुआ। व्यक्ति भीतर से ठंडा हो जाये पर उसका ईगो, (अहं) ठंडा नहीं पड़ता। अंदर से वह हार मान चुका होता है, पर अकड़ बनी रहती है। मेरी मूँछ का बाल नीचा नहीं होना चाहिये। भले जान ले कि मेरी गलती है, कमजोरी है, पर बात मेरी ही ऊँची रहनी चाहिये। उसी को आजमाने के लिए भीषण अहं से ग्रस्त चण्डकौशिक ने भगवान के पैर के अंगूठे पर डंक मार दिया। जैसे ही रक्त का प्रवाह चला, उसे रक्त में बहुत अंतर लगा। यह अंतर था रक्त में व्याप्त श्वेत कणों के कारण। श्वेत कणों की विशेषता क्या होती है। श्वेत कण, प्रेम, करुणा, वात्सल्य, अहिंसा के द्योतक हैं। श्वेत कणों से हमारे भीतर प्रतिरोधक क्षमता बनी रहती है। उनकी कमी होने पर प्रतिरोध की क्षमता घट जाती

14. परम धर्म है औषधि

धरम परम अरनाथ नो.....।

कुंथुनाथ भगवान की स्तुति में मन की व्यथा को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है- भगवन् !

मनहू किम ही न बाजे.....।

मैं कितना ही कुछ करता हूँ किन्तु यह मन केन्द्रित हो ही नहीं पाता है, न ही वह अपने भीतर रही बात को व्यक्त ही करता है। यह चाहता क्या है ज्ञात ही नहीं हो पाता। यह तो अपनी गति से ही चलता रहता है।

कोई व्यक्ति किसी चीज की कामना करे, चाह करे और स्पष्ट भी कह दे तब तो जानकारी मिले कि उसे अमुक वस्तु की कामना है। उस स्थिति में उस चाह को पूर्ण करना भी संभव हो सकता है। किन्तु इस मन की स्थिति अजीब है, यह कुछ झलकाता तो नहीं, क्षण में कहीं तो क्षण में कहीं उछाला खाता रहता है। इस स्थिति में कैसे इसे लाईन पर लाया जाये ?

बंधुओं ! इस प्रश्न का उत्तर अत्यंत सरल है। यदि इसे लाईन पर लाना है तो धर्म का आश्रय लिया जाये। धर्म ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जो मन को केन्द्रित कर सकता है और उसे अमन की यात्र करवा सकता है। धर्म ऐसा तत्त्व है, जिससे मन की परेशानी दूर हो सकती है, तो सहज ही वह उस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। कवि आनन्दघनजी भी बोल गये हैं- प्रभु के चरणों में भगवन् ! मैंने जाना कि मन की अवस्था को ठीक करने का, मन की विक्षेखलित स्थिति को व्यवस्थित करने का धर्म ही एकमात्र माध्यम है। परन्तु तभी उनके लिये एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। उन्होंने यह तो जाना कि अरहनाथ का

मैं धार्मिक अध्ययन करना चाहता हूँ।" उत्तर मिला- "भाई ! पहले विचार कर लो, मेरे पास दीक्षा लेते हो तो ही पढ़ाएंगे।" आप जरा सोचिये- ये क्या कोई सौदेबाजी है ? दीक्षा लो तो पढ़ावें नहीं तो नहीं । उन्होंने देखा यहाँ भी काम नहीं चलेगा तो और आगे बढ़ गये। मन में चिन्तन चलने लगा- पता नहीं वीतराग की उपासना करने वालों के मन में भी राग का प्रसंग कैसे बन जाता है ? जैसे नींबू के नाम से मुँह में पानी आने लगता है वैसे ही वैरागी को देखकर वीतरागता की उपासना करने वालों के मुँह में लारें पड़ने लग जाती हैं। ऐसी स्थिति क्यों बनती है ? एक जगह पर और आचार्यश्री पहुँचे। कहा गया- ये नये पातरे रंगे हुए हैं। तुम दीक्षा लो तो तुम्हारी नेश्राय में कर दोगे। देखा यहाँ भी धर्म के नाम पर धोखा है। वस्तुतः विरले ही नर होते हैं जो अपनी प्रज्ञा से धर्म के सही स्वरूप की खोज कर सकें। नानालालजी ने युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के पहले कभी दर्शन नहीं किये थे और सुना था कि आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. खादी पहनते हैं और जब खादी का रेशा ऐसा जुड़ा है कि वे खादी पहनते हैं तो सादगी का जीवन जीने वाले भी होंगे। आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. तो गुजरात में विराज रहे थे, पर सुना था कि उनके ही उत्तराधिकारी श्री गणेशीलालजी म.सा. हैं जो कोटा में विराज रहे हैं तो सहज ही विचार बना और निर्णय कर लिया कि मुझे युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के दर्शन करने जाना है। उनसे कहा गया- "वहाँ क्या मिलना है, फूटे-टूटे पातरे मिलेंगे, ऐसे नये-नये नहीं मिलने हैं।" निर्णय लिया था तो सोचा दर्शन तो कर लूँ। पहली बार दर्शन किये। न कोई बात, न कोई चीत। व्याख्यान चल रहा था। व्याख्यान का इतना प्रभाव पड़ा कि व्याख्यान पूर्ण होते ही निवेदन कर दिया- "गुरुदेव ! मैं आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।" गुरुदेव ने कहा- "भाई ! दीक्षा कोई सामान्य बात नहीं है, बच्चों के रमकड़े नहीं है कि थोड़ी देर खेल लिया, फिर छोड़ दिया। यह जिन्दगी भर का सवाल है। यह नहीं कि आज शादी कर लो, कल तलाक दे दो। जिन्दगी भर साधना मय जीवन व्यतीत करना होता है। दीक्षा की अभी कोई जल्दी नहीं है। पहले हमारे पास रहकर हमें देखो, हम तुम्हें देखेंगे फिर तुम्हारी स्थिति का अनुभव करेंगे, तुम्हें भी जब विश्वास हो जायें तब

दीक्षा का प्रसंग बनेगा।"

आप लोग क्या करते हैं ? जब लड़के की शादी तय करते हैं तो कई जगह देखकर फिर एक को पसन्द करते हैं। साधना के क्षेत्र में भी यह परख होनी आवश्यक है। आचार्यश्री ने भी परख की। बंधुओं ! मैं कोई जीवन चरित्र नहीं सुना रहा हूँ। मैं बता रहा हूँ कि धर्म की खोज करें तो कैसे करें। कवि के सामने भी यह समस्या रही थी और आज भी वह मौजूद है कि कहीं व्यक्ति क्रियाओं में उलझकर रह जाता है और कहीं वैचारिक लच्छेदार अवस्था या विचारों का ऐसा ताना-बाना बुना जाता है कि व्यक्ति उसमें उलझ कर रह जाता है। पर इन विचारों और क्रियाओं में कभी धर्म प्राप्त हो नहीं सकता। दुनिया में विचार करने वालों और क्रियाएँ करने वालों की कमी नहीं है, कमी है तो दोनों के बीच सामंजस्य बैठाने वालों की।

दोपहरी में चर्चा का प्रसंग चल रहा था उसमें कुछ स्थल विशेषावश्यक भाष्य के चल गये थे। वहाँ सामायिक की बहुत-सी परिभाषाएँ की हुई हैं। एक स्थल पर बताया गया है- जानना सामायिक है। जो पापों से छुटकारा दिलाये, ऐसा जानना सामायिक होता है। वहाँ पर सामायिक के पर्यायवाची शब्दों का भी विवेचन किया गया है। उसमें एक शब्द आया था 'परिज्ञा'। परिज्ञा-सामायिक कैसे ? चारों ओर से पाप के परित्याग के लिए जो जानना होता है, वह परिज्ञा कहलाता है। ऐसी सामायिक वीतरागो की होती है। वे चारों ओर से जानते हैं, प्रत्येक आत्मप्रदेश से जानते हैं। तीर्थंकर देवों का, सर्वज्ञों का एक-एक आत्मप्रदेश जानता है, देखता है। यह नहीं कि अमुक आत्मप्रदेश ही जानते हैं या अमुक ही देखते हैं। इसलिए उन्हें देखने के लिए आँख की आवश्यकता नहीं। वहाँ आँखें हैं तो भी ठीक है, आँख बंद कर लें हैं तो भी देखने में अंतर नहीं आएगा। यह बात मैं यहाँ इसलिए बत रहा हूँ कि शब्दों की परिक्रमा में व्यक्ति कैसे भ्रमित हो जाता है। किन्तु उसके अर्थ का सामंजस्य बिठाने में प्रज्ञा समर्थ है तो यहाँ भ्रमना क स्थिति बनने के बजाय समाधान की स्थिति बन जायेगी।

कविता में कहा गया है-

धरम परम अरनाथ नो.....।

यहाँ पर भी एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अरनाथ का धर्म परम है तो क्या बाकी के तीर्थकरों का धर्म परम नहीं है ? कहा अंतर है ? उत्तर- अंतर नहीं है। फिर अरनाथ के धर्म के साथ परम विशेषण की आवश्यकता कहाँ रह गई। क्यों है परम विशेषण की आवश्यकता प्रश्न नहीं उठता है। आपके उठा ? नहीं उठा, तो उठाना है। जेवर बनक नहीं सुनना है। यदि जेवर बनकर, मिट्टी के माधो बनकर सुने तो वह मात्र पादपूर्ति होगी। जब कोई श्लोक या गाथा बनाने का प्रसंग होता है और एकाध अक्षर कम पड़ता है तब छंदबद्ध करने वालों ने छूट दी पादपूर्ति के लिए। वैसे ही हमारा सुनना हो सकता है, पर उससे कह कुछ घटित नहीं हो पाएगा। अरनाथ का धर्म परम है इसलिए दूसरे तीर्थकरो के लिए धर्म परम नहीं है, यह नहीं मान लेना है। किन्तु हमारा धर्म और तीर्थकर धर्म में अंतर है। उनका धर्म परम है और हमारा धर्म सराग धर्म है। उनका धर्म वीतराग धर्म है। यह अंतर है या नहीं सरागता और वीतरागता में अंतर है। भगवन् ! आपका धर्म परम है किन्तु हमारा अभी परम धर्म नहीं है। परम धर्म को प्राप्त करना है, किन्तु अर्थ मैं सरागता में हूँ। जहाँ-तहाँ राग का भाव जोड़ता रहता हूँ। हमारा किस न किसी से राग है किन्तु वीतराग का किसी से कोई राग नहीं है इसलिए कहा, आपका जो धर्म है वह परम धर्म है। मेरी आँखों में तब राग भाव का मोतिया छाया हुआ है। तब-

केम जाणू भगवंतो रे.....।

हम आपके परम धर्म को कैसे जाने ? उसे जानने के लिए आँख में अजन होना आवश्यक है। जब तक मोतिया या कालापानी पूरे दूर नहीं हो जाता तब तक परम धर्म को जानना संभव नहीं है। मोतिया है राग भाव का, कषाय भाव का। जब तक डॉक्टर को दिखा नहीं दें और अजन, इलाज या ऑपरेशन नहीं करवा ले तब तक आँखों से जालें दूर नहीं होंगे और तब तक परम धर्म को जानना भी मामूली या महज

15. चित्त बने राडार

परमात्मा के चरणों में भावना व्यक्त करते हुए कवि कहा है—
धर्म परम अरनाथ नो, किम् जाणूं भगवंतो रे,
स्व-पर समय समझाये, महिमावंत महन्तो।

भगवन् आपकी महिमा अनंत है, उसका कोई पार नहीं है। परम धर्म को समझाने में आप ही सक्षम हैं और आप उस परम धर्म के स्वरूप को उजागर भी कर सकते हैं। मैं उस अकिंचन धर्म को कैसे जानूं।

सन्मति से उत्तर मिला यदि तूं धर्म को और धर्म के परम स्वरूप को जानना चाहता है तो तेरे लिये स्व-समय पर-समय को समझना आवश्यक है, क्योंकि अरनाथ का धर्म इसी कारण परम है। जब तक स्व-समय पर-समय को नहीं जान लिया जावेगा तब तक उस परम स्वरूप को जानना भी संभव नहीं होगा। उसी की व्याख्या की गई है—

शुद्धात्म अनुभव सदा,
स्व-समय एह विलासो रे।

निश्चयनय से कहे या व्यास्तिकनय से तो जिस समय शुद्ध आत्मिक श्रद्धान का आत्मा अनुभव करता है और सदाकाल उसे शुद्ध आत्म-स्वरूप में चलता है, वह स्व-समय है अधिकांश तथा हम करते हैं कि स्व-समय अर्थात् जैन सिद्धांत पर समय अर्थात् सिद्धांत। यह तो स्थूल व्याख्या हुई किन्तु गहन व्याख्या के अंतर्गत निश्चयनय के रूप में जो व्याख्या सामने आती है, वह कहती है कि जिस समय जो कार्य घटित हो रहा है उस रूप में उसका कथन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ इन्द्र ऐश्वर्य का जिस समय भोग कर रहा हो उस समय इन्द्र है, जिस समय ऐश्वर्य का भोग नहीं किन्तु दर्जन सहार

साधु नहीं थे क्योंकि तब पर-समय की छाया पड़ चुकी थी। वे उस समय पर रमण कर रहे थे, स्व में नहीं। जब तक 'स्व' में रमण नहीं हो और शुद्ध आत्म-स्वरूप की उपलब्धियाँ नहीं हो तब तक वह स्व-समय नहीं है। जो स्व-समय है वही धर्म का परम स्वरूप है, बाकी तो क्रियात्मक रूप में धर्म का परम् स्वरूप है। बाकी जो क्रियात्मक रूप में धर्म की आराधना की जाती है, उसमें किसी समय निश्चयनय का घटना होता भी है, परन्तु हर समय निश्चय का सद्भाव उसमें हो ही जाता है।

ऐसा नहीं कर सकते हैं, गुणस्थान का उतार-चढ़ाव अध्यवसाय के आधार पर होता है। यदि अध्यवसाय में उतार-चढ़ाव है तो भले पौशाक है, पर अध्यवसाय के आधार पर अंतर आएगा। एक व्यक्ति सम्यक्दृष्टि है, किन्तु संशय मोहनीय का वेदन करते हुए मिथ्यात्व में चला जाता है, मिथ्यात्व से फिर सम्यक्त्व में, फिर मिथ्यात्व में। जैसे तैराक थोड़ी देर नीचे, फिर ऊपर, फिर नीचे आ जा रहा है। हम उसे डूबा हुआ नहीं कहते। किन्तु तैराक कहते हैं- वह हर समय तैर नहीं रहा है, डूबकी भी लगा रहा है। वैसे ही जिस समय तैर रहा है उस समय सम्यक्दृष्टि है और जब डूब रहा है तब मिथ्यादृष्टि है। हमारे अध्यवसायों में कभी तैरने की स्थिति रहती है, कभी डूबने की। जब भंवर में गहरे उतरें तो मिथ्यात्व या मित्र का स्वरूप आ जाता है। जब तैरकर ऊपर आने का स्वरूप आता है तब सम्यक्दृष्टि का, परन्तु वह सब भीतर घटित होता रहता है। जो जागृत होता है वह अनुभव करता है कि मैं खिसक रहा हूँ, स्व-समय से हट रहा हूँ। जिसे माइग्रेन की तकलीफ हो उसे सिर दर्द होने के पहले या दस मिनट अथवा कुछ सैकिंड पहले अहसास होने लगता है कि मेरे सिर में दर्द चालू होने वाला है। ऐसे व्यक्ति को डॉक्टर इलाज क्या देते हैं ? कहते हैं कि जिस समय लगे कि दर्द होने वाला है दवाई ले लो तो वह शांत हो जाएगा, उसका प्रभाव नहीं होगा। जैसे डॉक्टर उससे कहते हैं कि जैसे ही आभास हो आप दवाई ले लीजिये, वैसे ही हमें जागरुक रहना है। जैसे ही लगे कि अब आत्मा कषाय में जाने की तैयारी कर रही है, मस्तिष्क

में तनाव प्रारंभ होने वाला है, वैसे ही उपयुक्त उपाय कर लीजिये। उपाय क्या इसे भी समझिये।

किसी ने कुछ कह दिया या तिरस्कार कर दिया कि तनाव उभर आता है। यदि उस समय एक क्षण के लिये जाना जाये, दृष्टि को आनंद केन्द्र पर स्थित कर ले और यदि आनंद केन्द्र का ज्ञान न हो तो शरीर को शिथिल कर ले तो फिर कोई तनाव नहीं रहेगा और हम देखेंगे कि जो तूफान आने वाला था वह साइड से निकल गया है। तब हम उससे किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होंगे। हम अपने अंदर तूफान को मोड़ना चाहें तो सावधानी रखनी आवश्यक है। सावधानी न रहे तो दुर्घटना घटित होगी ही। आपने रेल्वे स्टेशन पर लिखा भी देखा होगा- 'सावधानी हट्टी, दुर्घटना घट्टी।' इस नारे को जीवन के साथ जोड़ लीजिये। हमारी सावधानी हटने पर ही हम दुर्घटनाग्रस्त होते हैं। सावधानी बरकरार रहे तो जीवन में दुर्घटनाएँ घटित नहीं हो सकतीं। आने वाले तूफान के पूर्व यदि हम इतनी तैयारी कर लेंगे तो फिर हमारे ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

आकाश में हवाई जहाज उड़ता है, पर उसका चित्रण राडार पर आता रहता है। हमारी चित्रकृति राडार है। मन, वचन, काया की जो प्रवृत्ति होती है उसका चित्रण चेतना में पहले से ही अंकित होता रहता है। एकदम सजगता रहे तो एक्सीडेंट से बच सकते हैं। जैसे यदि पायलट सजग है तो वायुयान को दुर्घटना से बचा सकता है। किन्तु हम है कि जानकर श्री अंजान बने हुए हैं।

इस संदर्भ में एक बात और समझ लीजिये कि आत्मा पुरुष प्रतीक है। भगवान महावीर ने उसे पुरुष की संज्ञा दी है।

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्र.....।

हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है। बाहर के मित्र की आकांक्षा मत कर। पुरुष का अर्थ हम क्या लेंगे। जिसके हाथ, कान, नाक, मुँह आदि हो। पुरुष कौन ? मूछों पर ताव दे वह नहीं, जो पुरुषार्थशील है वह है पुरुष। यदि उसमें कायरता कूट-कूट कर भरी हो, लोगों के बीच मिर

भी नहीं उठा सकता हो तो, उसे पुरुष कौन कहेगा ? यह स्वरूप तो अबला का, नारी का बतलाया गया है। भगवान महावीर ने आत्मा को पुरुष कहा है। वैदिक संस्कृति में जहाँ भक्ति को प्रधान माना गया है वहाँ आत्मा को पुरुष न बताकर नारी कह दिया गया है। कृष्ण के साथ गोपियों मिलेगी आपको, किन्तु भगवान महावीर पुरुषार्थ की बात कहते हैं।

वे तो कहते हैं अपने भीतर के पुरुषार्थ को जागृत करोगे तभी तुम संसार सागर में तैर पाओगे। तैरने का मार्ग कोई भी बता सकता है, सहयोगी कोई भी बता सकता है किन्तु सहयोगी पहुँचा नहीं सकता। वह तो जहाँ तक तुम नहीं जानते वहाँ तक मार्ग दिखाकर, दिशाबोध करवा सकता है किन्तु कदम तो तुम्हें ही बढ़ाने होंगे। तुम्हारा पैर ही तुम्हें मँजिल पर पहुँचायेगा। जब हमारा पुरुषार्थ का स्वरूप है तो हम कहाँ उलझना चाह रहे हैं। यदि हम कायरता को स्वीकार करते चलते हैं पुरुषार्थी स्वरूप को नहीं जान पायेंगे, क्योंकि हमारी आत्मा तो पर समझ में पड़ी हुई होगी। कोई दो कठोर शब्द कहेगा तो हमारे मन में तूफान आ जायेगा और हमारी स्थिति को शिथिल कर देगा। एक बार का तूफान कितनी तबाही कर देता है इससे आप परिचित होंगे। आप अंतरंग तूफान को भले न जानें, पर बाहर के तूफान को देखकर तो अनुभव कर ही सकते हैं। सुना होगा कि उड़ीसा में जो तूफान आया था उस तूफान ने मनुष्य व पशुओं की अत्यंत विकट स्थिति बना दी थी। एक-एक दाने के लिये इसान मोहताज हो गया था। कितने व्यक्ति मकान छोड़कर भागे थे। सारे क्षेत्र के हिसाब से देखा हो तो एक तूफान ने ही भयंकर तबाही कर दी थी। तब हमारे भीतर आने वाले तूफानों से कैसी तबाही आएगी, क्या कभी सोचा है। हम सोच नहीं पाते हैं बल्कि उसे और आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं। अंतर का एक ही तूफान इतनी तबाही कर देगा कि शुद्ध आत्मिक स्वरूप का दिग्दर्शन भी कठिन हो जाएगा। वैसी अवस्था में परम धर्म को हम समझ नहीं पाएंगे, फिर वही शिकायत रह जाएगी।

किम जाणू भगवन्तो रे.....।

हैं तब तूफान से बचाव भी कर नहीं पाते हैं। कवि कहता है- भगवान! मैं उस स्व-समय पर-समय को समझना चाहता हूँ। जहाँ शुद्ध आत्मा के स्वरूप की स्थिति है, वहाँ विलास/केलि/आनंद है किन्तु जहाँ कषाय, राग, द्वेष, विषय वासना की स्थिति है वह अवस्था पर-समय की है। वह व्यक्ति को पुनः पुनः निवास की ओर ले जाता है और आवास की व्यवस्था करता है। पर जिसे शुद्ध आत्मा की अवस्था प्राप्त हो जाती है वह आवास की व्यवस्था नहीं करता है। नमिराजर्षि साधु बनने को तैयार हुए। इन्द्र ने परीक्षा लेने के लिए कहा- “अभी कहाँ जा रहे हो, बहुत सारे मकान, स्थायी निधि आदि बनाईये।” उन्होंने कहा- “जिसे संशय होता है, जिसकी पर-समय में गति है, वही मकान की सोचेगा, उसे ही आवास-निवास की आवश्यकता होगी। किन्तु शुद्ध आत्मा में रमण करने वाले को अस्थायी निवासों की आवश्यकता नहीं है। वह अपने शाश्वत स्थान को जानता है।”

भगवान महावीर विहार करते हुए पहुँचते थे तो कौन-सा मकान निवास के लिये अनुकूल है इस पर कभी विचार करते थे ? क्या कभी विचार किया कि वहाँ मच्छर काटेंगे, रह नहीं सकता। उन्होंने कभी कोई अपेक्षा ही नहीं की। चलते-चलते जहाँ आवास मिला, रुक गये। मच्छर काटे तो काटे, बिच्छू काटने आए तो आए। किसे काटेंगे ? आत्मा को सोंप, बिच्छू काट नहीं सकते। कहते हैं यदि तुम्हारे भीतर भय है तो भय से जहर पनपेगा, उसे उत्तेजना मिलेगी। सर्प काटने का मतलब है किसी से कठोर डंक मारने जैसी बात कह देना। कभी-कभी कोई शब्द कलेजे में ऐसा गहरा चुभ जाता है कि सँलिप्त ही रहता है। यदि हम डक से अपने को प्रभावित करें तो प्रभाव पड़ता है। यदि उसे ग्रहण न करें तो प्रभाव कैसे पड़ेगा। सामने वाले के पास जो सामग्री है वही तो वह दिखलाएगा। कोई न खरीदे तो वह किसके पास रहेगी ? विचार कीजिये कि एक सेठ जिसे अपनी संपत्ति नीलाम करनी है, वह उसकी मुनादी लगा दे और कहे कि नीलामी की बोली लगाये, कोई लगाये ही नहीं, तब सेठ कहे मुफ्त में ले जाओ, मुझे तो सफाई करनी है, फिर भी कोई न ले जाये तो वह माल किसका रहेगा ? वैसे ही कोई हमें कितना ही



हो गये। दान लेने वाले तो कृतार्थ होते ही है देने वालों की महिमा भी अपरम्पार रही है। ऐसे महिमावन्त महन्त को देने वाला भी दान देकर तिर जाता है।

सुपात्रदान सभी दानों में श्रेष्ठ कहा गया है। आप कहेंगे सुपात्रदान ? शास्त्र में तो अभयदान को श्रेष्ठ कहा गया है-

दाणाणं सेद्वं अभयप्पदाणं

हम विवक्षा से बात करेंगे। अभयदान की यहाँ विवक्षा नहीं की है। वैसे वह भी श्रेष्ठ है किन्तु सुपात्रदान को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस संबंध में मान्यता यह है कि लेने वाला और देने वाला दोनों सुपात्र थे। लेने वाला सुपात्र है, पर देने वाला सुपात्र नहीं है तो भी काम बनता नहीं है। लेने वाला सुपात्र न हो तो उतनी महिमा नहीं है। देने वाला, लेने वाला दोनों तो सुपात्र हो हीं, द्रव्य भी शुद्ध हो। ये तीनों शुद्ध होते हैं तो ऊपर से धन बरसता है किन्तु वेश्या व बहुरूपिया साधु की बात हो तो पत्थर बरसेंगे।

नगर में यशोगान होने लगा। गौशालक भी वहीं चातुर्मास संपन्न कर रहा था। उसका कोई सिद्धांत निश्चित नहीं था। साधना के मार्ग को वह नहीं जान रहा था। कोई बुला ले उसी से भिक्षा लेकर ग्रहण कर लेता था। इस प्रकार दान-दक्षिणा लेकर वह जीवन बसर कर रहा था। जब भगवान महावीर के तप के दिवस में उसने सुना तो बड़ा प्रभावित हुआ। इतने बड़े तपस्वी है कि कोई दान दे तो पाँच दिवस दृष्टि और अहोदाणं का उद्घोष होता है। जरूर उनमें कोई चमत्कार है। बस, लग गया पीछे कि देखूँ क्यों तपस्या करते हैं ! एक दिन पारणा फिर मासखमण। अरे बाप रे ! यह तो मुझसे नहीं होगा। दूसरा पारणा आनंद के यहाँ और तीसरा सुनंद के यहाँ हुआ। अब गौशालक ने दृढ़ धारणा बना ली जब-जब पारणा होता है तब-तब चमत्कार होता है। उसने भगवान से निवेदन किया कि आप जरूर विशिष्ट ज्ञानी हैं। यही कारण है कि देव उद्घोष करते हैं। मैं आपके ज्ञान को जानना चाहता हूँ कि आज मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा। भगवान तो मौन थे, उन्हें तो बोलना

निज स्वरूप से किरिया साधे-
तेह अध्यात्म कहिये रे.....

निज स्वरूप को साधने की क्रिया से अभिप्राय है वह क्रिया जिसका निष्कर्ष निज स्वरूप को साधने में होता है। वह क्रिया है अध्यात्म की। क्रिया कितनी भी करे यदि निज स्वरूप को साध नहीं पा रहे हैं तो वह आध्यात्मिक नहीं है। वह क्रिया धार्मिक कहला सकती है, पर आध्यात्म का पुट उसमें नहीं रहेगा।

मैंने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का उदाहरण दिया था। धार्मिक और आध्यात्मिक क्रिया के अंतर को उनके उदाहरण से समझें। स्व-समय और पर-समय की विवेचना इसी से जुड़ी है। हम अधिकतर आत्म-स्वरूप के अनुभव की गड़राई तक उतर ही नहीं पाते हैं। हाँ, धार्मिक क्रियाएँ करते अवश्य दिखाई देते हैं। तब आध्यात्मिकता कहाँ से आयेगी ? धार्मिक होना और धार्मिक दिखना दो अलग-अलग बातें हैं, दोनों अलग-अलग स्थितियाँ हैं, पर इन्हें समझ कौन पाता है। देखने वाला तो केवल अनुमान करता है और फल का भोक्ता भी वह नहीं होता। धर्म की क्रिया का फल तो धर्म करने वाले को मिलता है। उसी को पता भी होता है कि वह किस स्थिति में है। यदि वह सावधानी रखे, अपनी चित्तवृत्ति के राडार से मार्गदर्शन लेता रहे तो मन-वचन-काया की प्रवृत्तियों का सही स्वरूप उसके सामने उजागर होता रह सकता है। उसके बाद भी क्रिया, उसके स्वरूप, दिशा एवं गति पर नियंत्रण और उनका निर्धारण तो उसे ही करना होता है। राडार जो दिखा देता है उसके अनुसार प्रतिरोध तो सैनिक को ही करना होता है। तब समझ ले कि हम सैनिक हैं और हम सैनिक हैं भी क्योंकि हम गाते हैं- “महावीर के हम सिपाही बनेंगे।”

बहुत अच्छी बात है सिपाही बनो, पर महावीर के प्रति सिपाही वाली, सैनिक वाली, समर्पण वाली, निष्ठा वाली आर कादारी वाली दृष्टि भी तो रखो। सैनिक का कर्तव्य तो आदेश की पालना करना होता है, हर परिस्थिति में आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन करना होता है, उसका

16. धर्म बिना सब सून

धर्म परम अरनाथ नो....

धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

धारयति इति धर्मः।

जो धारण कहे वह धर्म है। प्रश्न होता है कि क्या यह व्याख्या या परिभाषा पूर्ण है ? किसे धारण करें ? कैसे धारण करें ? तो इस संबंध में कहा गया है-

दुर्गती पततां जनानाम्

दुर्गति में गिरते प्राणियों को जो आधारभूत होता है, जो नीचे गिरते को रोक देता है, वह धर्म है।

कभी-कभी व्यक्ति मान लेता है कि पुण्य का कोई कार्य कर दिया, भूखे को भोजन दे दिया, कहीं स्कूल, धर्मशाला का प्रसंग उपस्थित कर दिया तो मैंने धर्म कार्य कर लिया। पर ऐसा नहीं है। ऐसे सब कार्य पुण्य के कार्य नहीं होते हैं, पर जब व्यक्ति समझ नहीं पाता तो धर्म व पुण्य को एक कर देता है। पुण्य वह है जो आत्मा को पवित्र करता है। चादर मैली हो गई सावुन, सोडा, सर्फ का प्रयोग कर मैल दूर करने का प्रसंग उपस्थित किया तो मैल दूर हुआ। जैसा वह कार्य है वैसा ही कार्य है पुण्य का कार्य। इसी प्रकार पुण्य आत्मा को पवित्र और पाप आत्मा को मलीन करता है। पुण्य अलग है, पाप अलग है और धर्म अलग है। ऐसी गलती कभी-कभी हो जाती है कि लोग पुण्य व धर्म को एक ही खाते में खतियार करने लग जाते हैं। धर्म अंतर्मुखी होता है। बाहर से धुलाई होना पुण्य हो सकता है, पर अन्तर की अनुभूति धर्म के बिना नहीं होती। बिना धर्म के वह दुर्गति से बचाव नहीं कर सकता।

उसे बुझाने में समर्थ हो जाएंगे। उस आग को शमित करने का प्रयत्न करें, उसे किसी हालत में बढने न दें। उसे शांत करके शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो जीवन को धन्य बना पाएंगे। तभी दुर्लभ अंगों की प्राप्ति सार्थक सिद्ध हो पायेगी।

7.11.2000





17. आलौकित हो आत्मप्रदेश

धरम परम अरनाथ नो.....।

आत्मा अनंत गुणों का स्वामी है। एक-एक आत्मप्रदेश आलोकमय है, परन्तु कर्मों का आवरण होने से उसका आलोक हम प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसी जिज्ञासा मन में उठती है कि जब हम अपने शरीर को देखते हैं और मानते हैं कि इसमें आत्मा रहा हुआ है तब इसका वह आलोक बाहर क्यों प्राप्त नहीं होता है ? यदि यह आलोकमय है तो बाहर भी आलोक प्राप्त होना चाहिये। परन्तु आत्मा का आलोक केवल मस्तिष्क में होता है क्योंकि हमारा सारा सोच-विचार और चिन्तन-मनन मस्तिष्क में ही होता है। तो यह मानना चाहिये कि मस्तिष्क के आत्मप्रदेश ही आलोकमय हैं। शरीर के आत्मप्रदेशों में आलोक नहीं है। उनमें संवेदन भी नहीं है। परन्तु उक्त प्रश्न भी अपने आप में समीचीन है और जितने प्रश्न होते हैं, उनके समाधान भी मौजूद होते हैं। यह बात अलग है कि हमारा क्षयोपशम न हो परिणामस्वरूप उसका ग्रहण न हो। किन्तु जब-जब क्षयोपशम होता है तो बुद्धि उन्हें ग्रहण कर लेती है। हम समाहित हो जाते हैं, जिज्ञासा शांत हो जाती है।

आत्मा के प्रदेश में संवेदन शक्ति है और सभी प्रदेश आलोकमय है, ये नहीं कि केवल मस्तिष्क के भाग में ही संवेदन हो। हम जानते हैं कि यदि शरीर के किसी भी भाग पर चिन्गारी गिर जाये तो संवेदन का तत्काल संप्रेषण होगा और मस्तिष्क में सूचना पहुँच जायेगी कि वहाँ चिन्गारी गिर गई है। साथ ही मस्तिष्क से भी तुरन्त निर्देशात्मक सूचन का प्रसारण होगा और हाथ उसे हटाकर अलग कर देगा। इतना शीघ्रगामी तत्र है संवेदन का। इसके बराबर शीघ्रगामी कोई भी अन्य तंत्र हो नहीं सकता। आज विज्ञान ने जो कुछ आविष्कार किये हैं, वे हमारे सामने मौजूद हैं। व्यक्ति सैकिण्ड में नहीं तो मिनटों में हजारों किमी दूर की

वार्ता कर लेता है। अपने लिखित अक्षर हजारों कि.मी. दूर पहुँचाने में भले कुछ मिनट या कुछ सैकिण्ड लगते हों किन्तु हमारे आत्मा के तंत्र में इससे भी अल्पसमय लगता है। सूचना भी पहुँच जाती है और संकेत भी प्राप्त हो जाता है और तत्काल क्रियान्विति भी हो जाती है। पैर में काँटा गड़ा, सूचना पहुँची और तत्काल हाथ वगैरह काम करने लग जाते हैं। सरकार का कोई विभाग भी इतना जागृत-सक्रिय या शीघ्रगामी नहीं हो सकता। आत्मप्रदेशों में रही हुई ज्ञान की अवस्था से ही संभव है। यदि उन आत्मप्रदेशों में ज्ञान नहीं होता तो कोई सूचना मस्तिष्क तक तत्काल नहीं जा सकती थी। इस प्रकार प्रमाणित है कि आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में ज्ञान रहा हुआ है। यह बात अलग है कि संवेदन कभी मद, मंदतर, मदतम होता है और कभी तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम होता है। उसका कारण भी स्वयं होते हैं। इसे एक उदाहरण से समझिये।

एक किसान, हल जोतने वाला, बीड़ी सिगरेट उपयोग में लेता है। संयोग से यदि वह बीड़ी पीकर नीचे डाले और वह उसी के पैर के नीचे आ जाये और परिवार के सदस्य कहें कि बीड़ी पैर के नीचे आ गई है और वह यह पूछे कौन से पैर के नीचे है ? तो यह स्वाभाविक है क्योंकि उसके पाँव खुले होते हैं, जूते-चप्पल ना पहनने से नीचे की चमड़ी कड़ी हो जाती है परिणामस्वरूप तत्काल संवेदन प्राप्त नहीं कर पाते। दूसरे शब्दों में कहे वह चमड़ी मृतप्रायः हो जाती है तो संवेदन मिल नहीं पाता। अब समझिये जैसी उसकी हालत है वैसी ही हमारी अवस्था होती है— जब राग-द्वेष-कषाय की गहरी परत आत्मप्रदेश पर आ जाती है तो ज्ञान की संवेदन शक्ति मंद-मंदतर हो जाती है। एकदम लुप्त तो नहीं होती किन्तु मंद-मंदतर हो जाती है, परन्तु जैसे ही राग-द्वेष अज्ञान की परत अलग होती है तो पुनः संवेदन शक्ति जागृत हो जाती है। सूर्य, चन्द्र, तारों की रोशनी हमें अलग-अलग लगती है किन्तु विज्ञान कहता है कि चन्द्र की रोशनी अलग नहीं है, सूर्य के प्रकाश से ही उसमें प्रकाश आता है। विषय किसी रूप में हो किन्तु सूर्य यदि अलग हो जाये तो चन्द्र, ग्रह, तारों का प्रकाश नजर आता है। रात्रि में तारों का प्रकाश टिमटिमाता है। चँदनी रात हो तो चन्द्र



कि केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसमें यह भी बताया है कि फिर देवों ने महोत्सव का प्रसंग उपस्थित किया। गौशालक ने कहा- मेरे शाप से उपाश्रय जल गया। सिद्धार्थ देव ने कहा- जल नहीं रहा है, जल भी नहीं सकता क्योंकि वे साधनाशील संत हैं। उनके तप तेज से जल नहीं सकता। पूछा- तो फिर प्रकाश काहे का है ? तो बताया कि मुनिचन्द्र आचार्य आज ध्यान में अवस्थित हुए। कुंभकार ने उपसर्ग दिया। उन्हें केवलज्ञान हुआ और वे निर्वाण को प्राप्त हो गये। इसलिए देव पहुँचे हैं। गौशालक को तो थोड़ा मिलना चाहिये था। वह पहुँचा उपनाथ के यहाँ। संतों से कहा- खा-पीकर आराम से सो रहे हो। तुम्हारे धर्मगुरु-धर्माचार्य के कालधर्म की स्थिति बन गई है। तुम लोग सो रहे हो। गौशालक के कहने से वे जगे। उन्हें पश्चात्ताप हुआ, वे विचार करने लगे- हाँ ! हम शयन किये रह गये और हमारे धर्मगुरु, धर्माचार्य कालधर्म को प्राप्त हो गये। गौशालक ने जली-कटी सुनाई, फिर भी वे शांत भाव से सुनते रहे, किन्तु उस पर क्रोध नहीं किया।

तो समझिये साधु के लिए उपशम भाव महत्त्व रखता है। जैसे उपशम भाव की आराधना साधु करता है, वैसे ही श्रावक भी कर सकता है। कई श्रावक ऐसे हुए हैं जिन्होंने आराधना की है। अग्निशर्मा ने गुणसेन राजा के जीव को कई जन्मों तक भयंकर उपसर्ग दिये, पर प्रत्येक बार गुणसेन की आत्मा शांत भाव रखती रही और उपशम भाव में ही रमण का लक्ष्य बनाये रखा। यदि उपशम का रस एक बार प्राप्त हो जाये तो फिर देखिये जीवन में आनन्द आता है या नहीं। जब उधर लगाव नहीं है तो मन में थोड़ी-सी स्थिति बनते ही मन विचलित होगा, किन्तु उपशम शांत भाव का आनंद लेने वाले में चल-विचल अवस्था आ नहीं सकती।

मैं प्रभु के जीवन के प्रसंगों के विवरण सुनाता रहता हूँ किन्तु सुनने का सार है कि हमारे भीतर उपशम रस की मात्रा बढ़े। उपशांत अवस्था हमारे भीतर बननी चाहिये। यदि हम ऐसी अवस्था जागृत करने में सक्षम हुए तो तीर्थंकर का चारित्र्य सुन परमधर्म को भी प्राप्त कर पाएंगे। परन्तु सुनकर ही न रहे और चिन्तन-मनन करो। उपशांत भाव

जेड सुरक्षा नहीं चाहिये। काम-क्रोध-मत्सर ये सभी परस्पर जुड़े हुए हैं। भारत में तो कई नेताओं को जेड सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त हो रही होगी, पर हमें तो अनादिकाल से जेड सुरक्षा प्राप्त है या नहीं ? कोई थोड़ा-सा तिरस्कार कर दे तो ये जेड सुरक्षा वाले बमबारी की तैयारी कर लेते हैं। ये कहाँ से आती है ? ये हमारे साथ मे अनादिकाल से है, इसी कारण हमारी आत्मा जकड़न मे आ गई है।

बंधुओं ! देखें कि आज नेताओं की हालत क्या है ! वे सुरक्षा कर्मियों से घिर कर रह जाते हैं। वे खुली हवा मे अर्थात् आम जनता के बीच नहीं आ पाते हैं। यही दशा हमारी है। इसीलिए हम अपने ही भाईयो से दूर होते चले जाते हैं। ये जेड सुरक्षा हमारे स्वरूप वाली आत्मा से हमें दूर करती चली जाती है। भगवान कहते हैं कि यदि ये जेड सुरक्षा समाप्त हो गई, हमसे हटा ली गई तो प्रत्येक आत्मा के साथ हमारा मैत्री संबंध हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेव गाँवों में कथा सुनाते थे। कथा लंबी है, पर मैं संक्षेप मे सुना रहा हूँ। एक पिता ने मृत्यु के क्षणो मे पुत्र को शिक्षा दी- तू इकलौता पुत्र है, इसलिये तुझे कुछ शिक्षा देना चाहता हूँ। मेरी शिक्षा मानेगा तो जीवन सुखी बन जायेगा। फिर उसने ये शिक्षाएँ दीं- 1 सदा मीठा भोजन करना। 2 जाना हो तो सदा छाया में जाना ध्यान रखना कि कभी धूप की चिलकी न लगे। 3 हड्डियों की बाड़ बनाकर रखना। 4 यदि ये सारी स्थितियों न रहे तो गंगा जमुना के बीच मे मैंने धन गाड़ रखा है उसका उपयोग कर लेना। इतने पर भी सुखी न हो तो मेरे मित्र से सम्पर्क कर लेना।

इधर पिता ने प्रयाण किया, उधर पुत्र आज्ञा पालन मे लग गया। पुत्र रोज मिठाई खाने लगा। शुगर हो गई लेकिन पिता ने कहा था तो भी रोज मीठा भोजन करता रहा। घर वालो ने कहा, ऐसा कैसे चलेगा पर उसने कहा- नहीं, मुझे तो आज्ञा का पालन करना है। डॉक्टर ने मना किया तो भी उसने उत्तर दिया- कुछ भी हो मैं तो पिता की शिक्षा को अमली रूप देना चाहता हूँ, शिक्षा को आलमारी में मजाकर नहीं रखना चाहता।

प्रारब्ध मे था तो एक अनुकूल दृष्टि वाला डॉक्टर भी मिल गया। उसने कहा- “खाते रहिये, मैं इलाज करूँगा।” क्या ऐसा डॉक्टर चाहिये जो मन के अनुसार इलाज करे ? डॉक्टर तो स्वार्थी, पूर्ण रूप से व्यावसायिक मनोवृत्ति वाला था ही। उसने सोचा- मेरा क्या जा रहा है ? मरे तो ये मरे। वह तो इंस्युलिन के इंजैक्शन लगाता रहा। खाना है तो खाते रहो। 40 यूनिट काम न करे तो भले 100 यूनिट डालना पड़े, पर खाते रहिये। मरीज कहे छोड़ू नहीं और डॉक्टर भी सोचे मैं कमाई क्यों छोड़ूँ ? वह भी बचा रहे और मेरा काम भी चलता रहे। सभी काम चलाना चाहते हैं। काम नहीं रुकना चाहिये। बंधुओं ! इस काम चलाने के पीछे व्यक्ति जिन्दगी बर्बाद कर लेता है।

दूसरी शिक्षा थी- छाया में आना जाना। मुनीमजी से कहा- घर से लेकर दुकान तक पर्दे बंधवा दो। खा-पीकर सेठजी 11-12 बजे एक बड़ी बग्घी में दुकान जाते। सूर्यास्त से पूर्व लौट आते। बिना मालिक की खेती और बिना मालिक की दुकान नहीं चलती। मालिक सोया रहे तो दुकान नहीं चलती, आप जानते हैं। पर यहाँ आकर वापिस भूल जाते हैं। यदि ऐसे सोये रहे तो खेती उजड़ जाती है। जहाँ हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है, वहाँ हम कान में तेल डालकर, गाढी नींद मे आ जाते हैं। भौतिक पदार्थों में तो बड़े चौकस रहते हैं, परन्तु यहाँ सजगता हवा मे उड़ जाती है, इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं- जागो ! बड़ी कठिनाई से यह मनुष्य तन मिला है-

**चेतन चेतो रे, दस बोल जगत में
मुश्किल मिलिया रे.....।**

कौनसे दस बोल है जानते है ? उनमे मनुष्य जन्म प्राप्त होना भी एक बोल है। इसलिए ज्ञानी कहते हैं, मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है, उसे योही गंवा दिया फिर क्या मिलने वाला है ? फिर हाथ मलना ही बाकी रह जाएगा। परन्तु सेठजी के साथ कुछ ऐसा ही हुआ। उनके लिए रोज नये-नये पर्दे बनते, किन्तु रात को लोग खोलकर ले जाते। फिर नये बनते। दुकान चौपट हो गई। तब पिता ने जो तीसरी शिक्षा दी थी- हड्डियो की बाड बनाकर रखना, वह याद आई। उन्होने नौकरो से

एक सेठ जो प्रायः नशे में रहता, उसने घर में नौकर रखने का विचार किया। नौकर को आदेश दिया- मुझे रोज अच्छी मलाई का दूध मिलना चाहिये। नौकर ने कहा- ठीक है। जब नौकर ने देखा कि सेठजी तो नशे में रहते हैं तो पहले वह 4 रु. लीटर में दूध लाता था। अब उसने 3 रुपये का दूध लाना शुरू कर दिया और एक रुपये के बराबर का पानी मिला देता। सेठ को लगा ये गड़बड़ करता है तो उसे हटाकर दूसरे को लगाया। थोड़े दिन तो ठीक चला फिर उसने भी आधा दूध और आधा पानी देना शुरू कर दिया कि पता नहीं कब सेठ छुट्टी कर दे। मंत्री भी यही सोचते हैं कि पता नहीं सरकार कब मंत्रीमंडल से छुट्टी कर दे तो जितना लाभ उठा सकूँ उठा लूँ। तीसरा नौकर आया। कुछ दिन बाद उसने भी एक भाग दूध और उसमें तिगुना पानी मिलाना शुरू कर दिया। उसकी भी छुट्टी हो गई। सेठ ने कहा- सब चोर ही आते हैं, कोई दूध पिलाने वाला नहीं आता। चौथा नौकर रखा गया। वह और भी उस्ताद था। वह बाजार जाता चवन्नी की मलाई खरीदता दो कागजों के बीच में मलाई लाता और सेठजी के होठों पर लगा देता। सेठजी तो नशे में ही रहते थे। सेठजी दर्पण में मुँह देखते तो होठों पर मलाई लगी दीखती और सोचते- हाँ, ये नौकर मलाई का दूध पिलाता है। ऐसे सेठ और ऐसे नौकर हो जाये तो क्या कहा जाये। चार आने की मलाई मिल रही है और सेठ सोच रहा है ये दूध पिलाता है। किन्तु परम धर्म को जान लिया जाये तो फिर यह अवस्था रह नहीं सकती।

एक सेठ वह भी था जिसने अपने जीवन का निष्कर्ष पुत्र को शिक्षा के रूप में बताया था। उसकी तीसरी शिक्षा थी- हड्डियों की बाड़ लगाना। उसका तात्पर्य था कि जीते-जागते व्यक्तियों की हड्डियों की बाड़ लगाना ताकि किसी भी क्षण कोई भी व्यक्ति जान देने को तैयार हो जाये।

सेठ के पुत्र ने कहा- चौथी बात का अर्थ भी बता दो कि धन कहाँ है ? मैंने तो पैसे पानी बंधाने में लगा दिये, पर पानी नहीं बंधता। उन्होंने पूछा- तुम्हारे घर में गाये कितनी है ? उत्तर मिला- दो। एक का नाम गंगा और दूसरी का नाम यमुना है। पिता के मित्र ने कहा उनके

19. क्रान्त पथ के पथिक : सिरीवाल

चारो गतियों मे मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ कहा गया है। नरक गति में आत्मा को भयंकर पीड़ाएँ और यातनाएँ मिलती हैं। जो आत्माएँ या प्राणी पापाचरण करते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी आदि मे अपने जीवन को गँवाते हैं वे दण्ड से बच नहीं सकते। संसार की प्रशासनिक व्यवस्था मे तो सरकार की निगाहों से बचा जा सकता है, वकील के माध्यम से भी बचाव किया जा सकता है किन्तु प्रकृति के दरबार मे देर भले हो जाये पर अंधेर नही है। जो-जो क्रियाएँ घटित होती हैं उन क्रियाओ की प्रतिक्रिया भी घटित होती ही है। एक व्यक्ति चोरी करता है, चोरी से जो धन-सम्पत्ति मिल जाती है वह उससे भले हर्ष मना ले किन्तु यदि वह पलटकर देखे कि जिसकी वस्तु उसने चुराई थी उसे कितनी पीड़ा या वेदना हो रही होगी, वह कितना परेशान हो रहा होगा तो उसे पता चले कि उसने कैसा पाप किया है। धन चला जाये या धन का कोई हरण कर ले उससे भीषण मानसिक द्वन्द्व की स्थिति ही उत्पन्न नही होती मानसिक पीडा भी पहुँचती है। इसलिए चोरी को अनार्य कर्म कहा गया है, पापाचार बताया गया है। चोरी जैसे पापों का जो सेवन करता है वह भले यहाँ बच जाये किन्तु कही न कही उसे दण्ड भोगना अवश्य पड़ता है। ऐसे पापों का दण्ड भोगने के लिए ही नरक गति बताई गई है। वैदिक संस्कृति की दृष्टि से उस नरक गति मे यमदूत अनेक यातनाएँ देते है। व्यभिचार करने वालो तथा शराब पीने वालो सभी के लिए वहाँ यातना तैयार है। कहते हैं- नरक मे गरम-गरम सीसा उवाला जाता है और यमदूत वह गरम शीशा पापी पर उडेलते जाते हैं और कहते जाते हैं- "उस समय शराब के नशे में मदहोश रहते थे, अब इसका स्वाद चखो।" पापी भागना चाहते हैं किन्तु उन्हें भागने नहीं दिया जाता है। जो भागता है उसको पकड़कर पिटाई की जाती है। जो व्यभिचार का सेवन करते हैं उनके शरीर का गर्म-गर्म लोहे के खभो के

साथ स्पर्श कराया जाता है और कहा जाता है कि वहाँ व्यभिचार सेवन किया था अब इसका परिणाम भोग ले। चोरी करने वालो के शरीर को अनेक यातनाएँ दी जाती है और कहा जाता है कि तुमने दूसरों को पीड़ा पहुँचाई थी अब यहाँ तुम भी पीड़ा का अनुभव कर लो। ऐसी होती है नरक गति, जहाँ व्यक्ति पाप के फल का भोग करता है।

दूसरी गति तिर्यच की है। जो माया, कपट, ठगाई आदि करता रहता है और मन में खुश होता रहता है कि मैंने बुद्धि की चतुराई से दूसरे को ठग लिया, चंगुल में फँसा लिया या ऐसी ही भावनाएँ रखता है, उसे जो कर्मबंधन होते हैं वे उसे पशुयोनि में डाल देते हैं। परिणामस्वरूप उसे पशुओं के समान कठोर श्रम करना पड़ता है। परन्तु यदि आत्मा पहले से ही कुकर्मों से बचाव कर ले और ऐसे पापाचरण से स्वयं को मुक्त रखें तो ऐसे आत्मा का बचाव हो सकता है।

यदि कोई विचार करे कि पहले हमने पाप बहुत किये हैं उनका फल भोगना पड़ेगा इसलिये अब सदाचरण करने से क्या प्रयोजन ? क्योंकि पापाचरण के परिणाम तो भोगना ही पड़ेगा तो उनके लिए ज्ञानीजनों ने बताया है—

पाप पराल को पुंज वण्यो

अति मानों मेरू आकारो।

ते तुम नाम हुताशन सेती,

सहज प्रज्वलंत सारो।

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो.....।

प्रायश्चित्त भाव से यदि ऐसा व्यक्ति परमात्मा का नाम स्मरण करता है तो जैसे घास की गंजी दियासलाई की तीली की रगड़ से निकली चिंगारी से अल्पसमय में ही जलकर राख हो जाती है वैसे ही बहुत सारा पाप का ढेर भी थोड़े समय में ही जलकर नष्ट हो सकता है यदि परमात्मा की शरण को स्वीकार कर लिया जाये। सच्चे दिल से परमात्मा का स्मरण किया जाये तो पापी का भी उद्धार हो जाता है। वाल्मीकि जो रामायण के रचयिता है, वे पहले कौन थे आप जानते होंगे ? वे डाका डालकर, चोरी में लिप्त रहते थे किन्तु जैसे ही

राजी होगा यह आप स्वयं सोच लीजिये।

बंधुओं ! काम प्यारा होता है, नाम प्यारा नहीं होता। चमड़ी किसी की उजली हो पर काम न करे तो माता को भी बेटा भारी लगने लगने लगता है। पर जो भले काला-कलूटा हो, चमड़ी कैसी भी हो, किन्तु काम करता हो, वह सबके चित्त चढ़ जाता है। जो समाज में रहकर काम करने वाला है, लोग तत्काल उसे आगे लाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे काम प्यारा होता है वैसे ही यदि नाम के साथ परमात्मा की शरण स्वीकार करते हैं तो उस अवस्था में जीवन का बदलाव भी होना चाहिये। जब वह बदलाव बनता है तभी जाकर सच्चे रूप में परमात्मा की शरण स्वीकार मानी जाती है।

बंधुओं ! आज जिन ओसवालों को आप देख रहे हैं उनका भी इतिहास है। वे ओसियां गांव से निकले, जहाँ धर्माचार्य ने उपदेश दिया था। उपदेश ऐसा लगा कि सुनकर प्रतिज्ञा को स्वीकार किया। उसी प्रतिज्ञा के कारण वे महाजन बन गये और महाजनों के रूप में उनकी पहचान बन गई। नहीं तो एक व्यक्ति कितनी ही संपत्ति कमा ले किन्तु शराब पीने में लगा दे तो वह महाजन थोड़े ही होगा। पूज्य गुरुदेव छत्तीसगढ़ की घटना सुनाते थे कि वहाँ की धरती उपजाऊ है फिर भी लोग गरीब के गरीब हैं। लोग चोरी करने, पशु लड़ाने या अन्य पाप करने में लगे रहते हैं। संतो ने पूछ लिया कि मिट्टी उपजाऊ है फिर भी गरीबी क्यों है ? धन का अभाव क्यों है ? उत्तर मिला- भगवन् ! ये लोग जब तक पैसा हाथ में होता है, तब तक मौज-शौक, शराब-खोरी जैसे दुर्व्यसनों में पूरा पैसा उड़ा देते हैं। आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो यदि आज पैसा आ गया तो आज ही उड़ाकर समाप्त कर देते हैं, कल के लिए रखते ही नहीं हैं। कल का जुगाड़ कल। इसीलिए गरीबी इनका पीछा नहीं छोड़ रही है। जो व्यक्ति अपने बलबूते पर कमाता है, कड़ी मेहनत करता है और बचे हुए समय में परमात्मा का स्मरण करता है, उसका पैसा बच जाता है तब एक बीघा जमीन वाला भी अपनी आजीविका तो चलाता ही है। उसके पास अनाज इतना होता है कि वह दूसरों का भी भरण-पोषण करने वाला बनता है। इसलिये समझ लीजिये

हटाईये। हम इसे धोना चाहते हैं।” उन्होंने वचन दिया कि यहाँ पर उपस्थित व्यक्ति शराब-माँस का सेवन नहीं करेंगे, जुआ नहीं खेलेंगे, शिकार नहीं करेंगे, वेश्यागमन और परस्त्रीगमन नहीं करेंगे। इस प्रकार उन्होंने सप्तकुव्यसनों का त्याग कर दिया।

बंधुओं ! लोग कहते हैं कि जीवन बदलता नहीं है किन्तु तीर्थंकर देवों की वाणी से तो एक बार में ही परिवर्तन हो जाता है। परन्तु यह अनुभूति का विषय है। आचार्यदेव के एक व्याख्यान से बलाईयो का जीवन परिवर्तित हो गया। संघ ने भी लक्ष्य बनाया, पदयात्राएँ निकाली, उन्हें समझाया कि कैसे जीवन जीया जाये, घर की सफाई कैसे की जाये, बच्चों को संस्कार कैसे दिये जाये आदि। दृढ़ निश्चय से ये सारा प्रसंग उपस्थित हुआ था।

भाई रामलालजी बावरी कुछ समय पहले उपस्थित हुए तो कहने लगे कि हमारी जाति का उत्थान होना चाहिये। उन्होंने यहाँ 35 की तपस्या भी की। गत वर्ष मासखमण किया था। कोठारीजी जाकर आये तो बताने लगे कि गाँव के लोग इन्हें महाराज के नाम से जानते हैं। इन्होंने विचार व्यक्त किये और इन्हीं की प्रेरणा से जो व्यक्ति उपस्थित हुए हैं वे भी विचार करें कि हमें ऐसे छोटे आचरणों में नहीं पडना है। तो आपको क्या करना है ? छोड़ना है माँस, मदिरा, शिकार आदि। किसकी तैयारी है ? जिनकी तैयारी हो, दबाव की बात नहीं, मन में पक्का विचार हो, तैयारी हो तो खड़े हो जायें, बहिने भी खड़ी हो जायें। उनके संकल्पित मन से खड़े हो जाने के बाद यह प्रतिज्ञा दिलाई।

प्रतिज्ञा- आज से हम माँस सेवन नहीं करेंगे, शिकार नहीं खेलेंगे, जुआ नहीं खेलेंगे, शराब नहीं पीयेंगे; परस्त्री गमन का प्रसंग उपस्थित नहीं करेंगे; वेश्यागमन का प्रसंग भी उपस्थित नहीं होने देंगे; चोरी नहीं करेंगे।

ईश्वर की साक्षी से आपको नियम दिलाये जाते हैं। 120 व्यक्तियों ने प्रत्याख्यान लिये, जिसमें 40 व्यक्तियों के उपवास भी थे। आज से आपका ये लक्ष्य बने कि आपका जीवन प्रामाणिकता के साथ

20. जगे हमारी सुप्त शक्तियाँ

आत्मसाधना की निष्पत्ति समाधि में है। धर्म अनुष्ठान प्रतिदिन हम कर रहे हैं। परन्तु धार्मिक अनुष्ठान करते हुए समाधिभाव की अवाप्ति-प्राप्ति हो पाई है या नहीं या अभी भी मन अशांत है। मन में उथल-पुथल या सकल्प और विकल्प की स्थिति तो नहीं है यह अन्वेषण करने की आवश्यकता है। यदि संकल्प और विकल्प चलते रहें, मन में उतार-चढ़ाव आते रहे और हम धार्मिक अनुष्ठान भी करते रहें तो वे अनुष्ठान हमें निष्पत्ति तक नहीं पहुँचा पायेंगे।

समाधि के चार प्रकार बताये गये हैं- सूत्र, विनय, आचार और तपस्या। वचन है-

सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाधि रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तरिये, आत्मभाव आराध रे प्राणी॥

धार्मिक अनुष्ठान हम कर रहे हैं किन्तु धार्मिक अनुष्ठान के लिए आचरण की जितनी आवश्यकता है उतनी ही सूत्र और विनय के साथ तपस्या की भी आवश्यकता है। इन चारों का यदि संगम बन जाये और चारों के संगम से हमारी साधना-आराधना चले तो वह निश्चित रूप से समाधि प्राप्त कराने वाली होगी।

बंधुओ ! किसी भी धर्म अनुष्ठान का पालन करते हुए आप उच्चारण करते हैं कि सूत्र के अनुसार मैंने इसकी पालना न की हो, सूत्र में जैसी क्रिया की विधि है, उस प्रकार से उसकी पूर्णता न की हो तो उसके लिए "मिच्छामि दुक्कड़" दिया जाता है। यहाँ सूत्र प्रथम है-

पढमं नाणं तओ दया।

जो क्रिया करना चाहते हैं, पहले उसका ज्ञान होना चाहिये। ज्ञान के पश्चात् उसके प्रति विनय होनी चाहिये, मन में श्रद्धा होनी चाहिये,



उभरा वह था जैसे कीड़े बिलबिलाते हैं वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति दुःख से सतप्त है। विचारों की कुलबुलाहट से प्राणी उन्हें कितने परेशान दिखे और भगवान महावीर ने आत्मसमाधि के लिए तत्काल देशना दी। यह बात अलग है कि देशना सुनने वाले बहुत थे किन्तु क्रियान्विति करने वाले कोई नहीं। इसीलिए कहा जाता है कि प्रथम देशना खाली गई क्योंकि वहाँ सुनने वाले देव थे जो धार्मिक अनुष्ठान करने में समर्थ नहीं होते। वे सुन सकते थे किन्तु कर नहीं सकते थे। बंधुओं । देखिये कि देवों से बढ़कर सौभाग्य मनुष्यों को, श्रावकों को प्राप्त है। जो देव नहीं कर पाता वह मनुष्य कर लेता है। तब सोचिये, हमारे भीतर कितना सामर्थ्य है। देवों से भी बढ़कर सामर्थ्य है। जिसे देव नहीं कर सकते उसे मनुष्य करने में समर्थ है बशर्ते वह पुरुषार्थ प्रकट करे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति अपनी शक्ति से अनभिज्ञ होता है जब कोई उसे स्मरण करा दे तो उसकी सुषुप्त शक्ति जागृत हो जाती है। हनुमान को यह पता नहीं था कि वे समुद्र लांघ सकते थे। किन्तु जब उन्हें स्मरण कराया गया, "हनुमान ! तुम्हारे भीतर वह शक्ति है। अब अवसर आया है तो ऐसे अवसर पर यदि उस क्षमता को प्रकट नहीं कर सकते तो फिर किस काम की।" कहते हैं तत्काल हनुमान के भीतर ऐसी ताकत पैदा हुई कि उनका विराट रूप बन गया और वे समुद्र को लांघने में सफल हो गये। वह विराट रूप हमारे भीतर, हम सबके भीतर विद्यमान है बशर्ते हम उसे जागृत कर ले।

विद्वान् श्री राजेशमुनिजी म सा कह गये कि तीली रगड़ खाकर दीपक को प्रकाश देती है, जिसका फैलाव होता है। जैसे माचिस में ज्योति भरी होती है, दिखती नहीं है, किन्तु रगड़ लगने पर वह प्रकट हो जाती है, वैसे ही तीर्थंकर देवों के प्रवचन होते हैं। हालाँकि शब्द अपने आप में जड़ होते हैं किन्तु वे चेतना को ऐसी सामर्थ्य दे सकते हैं कि चेतना में ओज और जागृति पैदा हो जाये। तीर्थंकर देवों की वाणी भले प्राकृत या अर्धमागधी में निबद्ध हो किन्तु उसकी रगड़ यदि हमने अपनी आत्मा में, आत्मा की बाती में लगा ली तो हमारी आत्मा आलौकिक हो सकती है। इसीलिए कवि विनयचंदजी कहते हैं

टुकड़ा था अतः मैंने फेंक दिया।" फिर कहा- "पर मेरी जिज्ञासा है कि जिस समय मैं वह आपके पास लाया था तब ही आपने ये बात क्यों नहीं बता दी ? मैं उस समय ही फेंक देता।" सुदृढ़ सेठ ने अब रहस्य खोला, कहा- "मैं समझ गया था किन्तु उस समय कहता तो तुम्हारे दिल मे मेरे प्रति अन्यथा विचार पैदा होते ? और यह भाव पैदा होते कि मित्र होकर भी शोषण में लगे हैं या कालान्तर मे छुड़ाने आते तो यह बात भी आती कि मेरा रत्न दबा लिया। इसलिए मैंने कहा था कि घर पर ही रहने दो। अब जब तू स्वयं पारखी बन गया तो परीक्षा कर ली। अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पिता ने बहुत संपत्ति लगाकर वह रत्न खरीदा होगा किन्तु जब देखा कि यह काँच का टुकड़ा है तो सदमे से उनकी मृत्यु हो गई। रत्न पड़ा रह गया।"

लुंका के जीवन से संबंधित यह एक घटना है जो सिद्ध करती है कि पूत के पैर पालने मे ही दिख जाते हैं। लोकाशाह के जीवन की यह विशेषता थी कि वे रत्नों की परख में जितने कुशल थे, धर्म के प्रति भी उतने ही सजग थे। जहाँ भी संतो का संयोग मिलता, धर्म-चर्चा करते। यह जयपुर भी जौहरियों की नगरी है। यहाँ के श्रावक कहने लगे- पहला चातुर्मास जयपुर मे हो। सुना था जयपुर संघ धर्मरसिक संघ है। मानवमुनिजी ने कहा था, जयपुर के लिए कि यह जिनवाणी का रसिक संघ है। यहाँ के मंत्रीजी कहने लगे यहाँ आप शास्त्र का वांचन करे। उनकी भावना का सम्मान करते हुए मैं भी अपनी क्षमता के अनुसार वीतराग वाणी का अवलंबन लेते हुए लगभग 4 महीने से कुछ ऊपर ही, अपनी बात प्रस्तुत करता रहा। यहाँ के श्रावकों व बाहर के दर्शनार्थियों ने सुनने मे तत्परता दिखाई। वे सुनते रहे तब मैं यह बात भी कह दूँ कि वे लोकाशाह का अनुसरण भी करें। अनुसरण करने की बात जिस विशेष प्रयोजन से मैं कह रहा हूँ, उसे भी समझिये।

लोकाशाह सुनकर ही नहीं रहते थे आचरण भी करते थे। जब एक बार उनकी लिखावट संतों ने देखी तो सोचा कि शास्त्रे की प्रतियाँ जीर्ण-शीर्ण हो रही है, क्यों न उनका उद्धार करा लिया जाये। शास्त्रों के पुनर्लेखन का प्रस्ताव लोकाशाह के सम्मुख रखा गया। उन्हें तो जैसे मुँह

को आश्चर्य हुआ। पूछा- “क्या दो प्रतियाँ करते हो ?” उत्तर मिला- “हाँ, मुझे भी चाहिये।” आज भी कई भाई संतों के गीत सुन लेते हैं तो कहते हैं कि डायरी दे दो। गीत पसंद आ जाता है तो क्या करते हैं ? नकल-वकल नहीं करते। आँखों पर जोर नहीं देते। झट जाते हैं कम्प्यूटराईज्ड करवाकर पॉकेट में डाल लेते हैं। ऐसी-ऐसी हरकतें जानने, देखने, सुनने में आती हैं। ये उचित नहीं है। लिखिये हाथों से, वहाँ मस्तिष्क काम करेगा। पॉकेट में भर लेंगे तो मस्तिष्क का काम नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि लिखने से विषय 50 प्रतिशत हृदयंगम हो जाता है। एक बार लिखने से यदि 50 प्रतिशत अंकित हो गया, तो फिर दो बार पढ़ेंगे तो बहुत कुछ याद हो जावेगा।

लॉकाशाह ने स्पष्टीकरण दिया- “दो प्रतियाँ करता हूँ किन्तु रात में करने में कुछ आरंभ की स्थिति बनती है इसलिए वह प्रति नहीं दे सकता।” उनसे कहा गया- “दोनों दो।” लॉकाशाह ने दृढ़ता से विरोध प्रकट करते हुए कहा- “नहीं, दिन में की है, वह सेवा में समर्पित है, रात की नहीं दे सकता।”

बंधुओं ! यह है लॉकाशाह की शास्त्रों और धर्म के प्रति समर्पण की सौक्षिप्त गाथा। यही लॉकाशाह शास्त्रों का अध्ययन करते हुए धर्म द्वंद्व भी बजाने लगे। इधर भगवान महावीर का जन्म राशि पर भस्म ग्रह का काल पूर्ण हुआ और उधर लोकाशाह की क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। एक बार संघ निकला जो वर्षा के कारण आगे बढ़ नहीं पाया। संघ के लोग लॉकाशाह को सुनने चले जाते। उनको सुनने में काफी रुचि होती उसी संघ के 45 व्यक्तियों ने एक साथ दीक्षा स्वीकार की। फिर लोगों ने उनका तिरस्कार किया और कहा कि ये धर्म विद्रोही है, पर वे घबराये नहीं, प्रचार-प्रसार करते रहे। ग्रंथों में अलग-अलग प्रसंग है। यह भी बतलाया गया है कि वे गृहस्थ रहे। ऐसा भी बतलाया गया है कि वे साधु बने। साधु बनकर प्रचार-प्रसार किया। उसी दौरान जब वे एक बार अहमदाबाद की ओर जा रहे थे, तब एक ढूँढ़े में रुके। लोगों ने कहा- ये ढूँढ़िया है। उन्होंने निर्लिप्त भाव से उत्तर दिया- कोई बात नहीं, जो

तत्त्व इधर-उधर हो रहा था, उसे हमने ढूँढ लिया है। जो ढूँढ ले वह ढूँढिया। उन्होंने सही अर्थ ही निकाला।

भगवान महावीर के निर्वाण के 609 वर्षों के बाद दिगम्बर मत की स्थिति बनी। 690 वर्ष बाद मूर्ति की स्थापना का प्रसंग बना। कहा जाता है कि भगवान महावीर के निर्वाण के 694 वर्ष बाद पहला मंदिर सांचोर में निर्मित हुआ था।

तब से चैत्यवासी परम्परा का प्रारंभ हुआ। इस प्रकार जिनशासन की क्रियाओं की धूमिल अवस्था बनी।

श्री भद्रबाहु स्वामी के स्वप्न का फल सुनकर जो संत श्री भद्रबाहु स्वामी के साथ दक्षिण की तरफ प्रयाण कर गये उनका उधर ही विचरण होता रहा। दक्षिण में जो पहुँचे उनकी सुविहित मार्ग के रूप में पहचान बनी। फिर लोकाशाह की क्रान्ति के बाद वे सुविहितमार्गी नया रूप साधुमार्ग बना।

विचार कीजिये- क्रान्ति किसे कहा जाये ? कोई कहता है क्रान्ति वह है जिसमें खून-खराबा होता है। किन्तु क्रान्ति का वह रूप यहाँ नहीं समझा जाये। क्रान्ति वह है जो हमारे भीतर की भ्रान्ति दूर करे। उसी क्रान्ति के आधार पर जीवन में शांति स्थापित होगी। जब तक भ्रान्ति है, क्रान्ति घटित नहीं होगी। जब तक क्रान्ति घटित नहीं होगी, तब तक शांति भी नहीं मिल सकती। कितनी ही प्रार्थना कर ले, जाप कर ले, कुछ भी कर ले किन्तु जिन्दगी में शांति प्राप्त हो ही नहीं सकती। आज हमारी विचित्र अवस्था बन गई है। कैसे-कैसे जीवन को भ्रात करते चलते हैं और मान लेते हैं कि हम क्रान्ति कर रहे हैं। आपको एक दृष्टान्त देता हूँ।

कुछ सियार उत्पात करते नगर में चले गये तो लोगो ने उन्हें खदेड़ दिया। उनमें से एक सियार कुछ ज्यादा ही होशियार था। भागते समय वह कागज का एक टुकड़ा उठा लाया। फिर उस सियार ने जंगल में सभा बुलाई और एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर सभा को सम्बोधित करने लगा- "सियार भाईयो ! घबराने की आवश्यकता नहीं है। मैं प्रमाण पत्र लाया हूँ। उसके आधार पर मैं नगर में गया था और मन चाहा



आचार्य श्री रामलालजी म.सा. का जीवन परिचय

निवासी	: देशगोक
पिता का नाम	: श्री मेमीचन्दजी भूरा
माता का नाम	: श्रीमती गवराबाई भूरा
गोत्र	: भूरा
जन्म तिथि	: चैत्र सुदी 14 संवत् 2009
विवाहित/अविवाहित	: अविवाहित
दीक्षा तिथि	: माघ सुदी 12 संवत् 2031
दीक्षा स्थल	: देशगोक
दीक्षा गुरु	: आचार्य श्री मानेश
दीक्षा के समय उम्र	: 22 वर्ष 9 माह 28 दिन
युवाचार्य पद तिथि	: फाल्गुन सुदी 3 संवत् 2048
युवाचार्य पद प्रदान स्थल	: बीकानेर
युवाचार्य पद	
के समय दीक्षा पर्याय	: 17 वर्ष 21 दिन
युवाचार्य पद के समय उम्र	: 39 वर्ष 10 माह 19 दिन
युवाचार्य काल	: 7 वर्ष 7 माह 15 दिन
युवाचार्य काल में दीक्षा (सर्तों की)	: 9
आचार्य पद तिथि	: कार्तिक बदी 3 संवत् 2056
आचार्य पद स्थल	: उदयपुर
आचार्य पद के समय उम्र	: 47 वर्ष 6 माह 4 दिन
आचार्य पद के समय दीक्षा पर्याय	: 24 वर्ष 8 माह 6 दिन

